[illegible] १०—१

महाकवि चच्चा

लेखक

अन्नपूर्णानन्द

प्रथम संस्करण }
२००० }

काशी
१९८६

प्रकाशक
बलदेव-मित्र-मण्डल,
राजादरवाजा, काशी

मुद्रक
माधव विष्णु पराड़कर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी
४८७४-८९

समर्पण

अपना एक आदर्श था। उसे अपने जीवनका अखण्ड-दीप समझता था। पर कुचक्रोंकी आँधी उठी और वह ठण्डा हो गया। जिसे सूमके सोनेकी तरह रखता था वह धूलकी पुड़िया साबित हुई।

अब कुछ नहीं है। इस कुछ नहीं को, जो पहले सब कुछ था, यह पुस्तक—योंही—समर्पित है।

अन्नपूर्णानन्द

निवेदन

दिल दुखानेका ध्येय अपना कभी भी न रहा। आलोचनायें कहीं-कहीं कड़ी हो गयी हैं, पर आवश्यकतासे अधिक नहीं। पात्र सब काल्पनिक हैं, घटनायें भी।

दो लेख पूरे और चारके कुछ अंश पत्रिकाओंमें पहले प्रकाशित हुए थे।

भूल-चूकके लिये क्षमाकी आशा करता हूँ।

विनीत
अन्नपूर्णानन्द

लेख सूची

महाकवि 'चच्चा'

महाकवि 'चच्चा'

१

श्रीगणेश

क ने ख से कहा और ख ने ग से कहा—करते-करते शहरके सभी साहित्यिकोंमें बात फैल गयी कि अमुक क्लबमें आज शामको कवि 'चच्चा' की जीवनीपर पं० विलवासी मिश्रका भाषण होगा।

छः बजे भाषण आरम्भ होनेवाला था, पर पाँच ही बजेसे आगन्तुकोंका तांता बँध गया। साढ़े पाँच बजेतक क्लबका कमरा ठसाठस भर गया। कहीं तिल रखनेकी जगह न रह गयी। स्थानाभावके कारण सम्पादकाचार्य पं० शूलपाणि त्रिपाठी आलमारीपर चढ़ कर बैठ रहे। समालोचक-प्रवर पं० ज्ञानचक्षु शर्माको कुछ देर तक बाहर ही खड़ा रहना पड़ा—

अन्तमें लाला घासीरामने अपनी जगह खाली करके उन्हें वहाँपर स्थापित किया। इससे पं० ज्ञानचक्षु बहुत प्रसन्न हुए और लाला घासीरामको भी निश्चय हो गया कि अब उनकी नयी पुस्तक 'बुद्धि-बवण्डर' की समालोचना बड़े मार्केकी निकलेगी।

ज्यों-ज्यों छःका समय निकट आने लगा त्यों-त्यों उपस्थित समुदायकी उत्सुकता बढ़ने लगी। उत्सुकता बढ़कर आतुरतामें परिणत हुई और अब आतुरता भी बढ़कर हुल्लड़शाहीका रूप धारण करना चाहती थी कि पं० बिलवासी मिश्र बोलनेके लिये खड़े हुए।

क्या गजबका व्यक्तित्व है! उन्हें देखते ही सारी मण्डली शान्त और सजग हो गयी। यहाँतक कि लाला मल्लूमलने पेन्सिल चबाना बन्द कर दिया। मैं भी बस सत्ताइस रुपयेके बिलकी चिन्ता भूल गया जिसे मुझे सबेरे ही चुकाना था और जिसे चुकानेके लिये मेरे पास सत्ताइस पैसे भी न थे।

एक बार बिलवासीजीने अपने चारों ओर देखा मानों हमलोगोंके बुद्धिबलको कूत रहे हों। इसके बाद पानकी गिलौरियोंको बराबरके हिस्सोंमें दोनों गालोंमें दबाते हुए बोले—

"सज्जनो! जिस प्रकार मनुष्य पृथ्वीके गर्भसे हीरा और सोना प्राप्त करके अपनी धनराशिको बढ़ाता है उसी प्रकार वह गवेषणाके गर्भसे तत्वरत्नोंको प्राप्त करके अपने ज्ञानके भण्डारको

भी बढ़ाता है। गवेषणा ही इतिहास, साहित्य और विज्ञान आदिकी जान है। कभी-कभी इसके द्वारा ऐसे रहस्योंका उद्घाटन होता है कि सुननेवाले दाँतों उँगली दबाते हैं। उदाहरणके लिये हमारे मित्र लाला मल्लूमलने बरसोंके अन्वेषणके बाद यह प्रमाणित किया है कि अकबरके समयके प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ मियाँ तानसेन अन्य गवैयोंकी तरह कुलञ्जन नहीं फाँकते थे, वरन् गीनतान खाया करते थे।

इसी प्रकार साहित्यके क्षेत्रमें जब मैं गवेषणाकी धुनमें मग्न होकर चरने और विचरने लगा तब मुझे पता चला कि हिन्दीमें 'चच्चा' उपनामके एक महाकवि हो गये हैं। उन्हींका कुछ परिचय मैं आज आपको देना चाहता हूँ।

यद्यपि मैंने बड़े परिश्रम और खोजसे इनकी कुछ रचनाओंका संकलन किया है और इनके जीवन-सम्बन्धी कुछ घटनाओंपर प्रकाश डाला है, पर इनके नामका प्रथम परिचय पानेका श्रेय मुझे नहीं बल्कि दैवी संयोगको है। उसका किस्सा इस प्रकार है।

शायद आपको याद होगा कि १९२७ के मार्चके महीने में—अर्थात् फाल्गुनमें—युक्तप्रान्तके कुछ भागोंमें घोर वृष्टि हुई थी और लाखों किसान तबाह हो गये थे। रबीकी फसल बिल्कुल तैयार थी, अधिकांशतः खलिहानोंमें कटकर आ गयी थी—और वहीं सड़कर बरबाद हो गयी।

उन्हीं दिनोंकी बात है कि मैं रेलसे कहीं जा रहा था। किसी स्टेशनपर एक सज्जन गाड़ीमें चढ़े और मेरी ही सीट-पर आ बैठे। पानी बरसते देख उन्होंने कहा—'यह बेवक्तकी शहनाई तो नहीं अच्छी लग रही है।'

मैंने उत्तर दिया—'जी हाँ और क्या! भला फागुनमें वृष्टिका क्या काम था! मैं अगर वसन्तमें मलार गाऊँ तो मुझे लोग बेवकूफ कहेंगे पर परमात्मा वसन्तमें पानी बरसा रहा है तो उसे कोई कुछ नहीं कहता।'

'कई जिलोंमें हाहाकार मच गया है।'

'पूरी बरबादीका सामना है।'

'देखिये एक कविने इस सम्बन्धमें कितनी टाँके-तौल बात कही है—

पाप सराप त्रिताप सबै मिलि
होत महा हित हानि जियानी।
दीन दुखी दुखिया दुखखान
'चच्चा' कवि देखि सकै न बखानी॥
एकतें एक अनेक कहा लौं
कहाँ करुना की कलेस कहानी।
पै सबतें विकराल बड़ै यहि
फागुन मेह प्रमेह जवानी॥

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसे सुनकर मैं लोट-पोट

हो गया। इसके पहिले मैंने कवि 'चचा' का कभी नाम भी नहीं सुना था पर उसी दिनसे मैं उनके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लग गया। रेलवाले सज्जन मुझे उनके बारे में केवल इतना बता सके कि वे काशी में रहते थे, काशी-में ही मरे और उन्हें मरे अभी अधिक दिन नहीं हुए।

केवल इतने आधारपर मैंने काम करना शुरू किया। यह सब मैं आप लोगोंको कहाँ तक बताऊँ कि मुझे किन-किन तक-लीफोंका सामना करना पड़ा; कहाँ-कहाँकी खाक छाननी पड़ी, किस-किसकी सिफ़ारिश करनी पड़ी। मिश्र बन्धुओंने बहुत पूछनेपर बतलाया कि यदि 'विनोद' में कवि 'चचा' का नाम नहीं है तो फिर वे कवि हो कैसे सकते हैं? याज्ञिक बन्धुओंने कहा कि पहिले तो चचा नामधारी किसी कविका होना ही असम्भव है और यदि इस नामका कोई कवि रहा भी हो तो उसकी कविता पढ़नेके हम विरोधी हैं। अस्तु।

इन उत्तरोंसे मैं निराश नहीं हुआ। मेरा अनुसन्धान बराबर जारी रहा। मुझे इसके अनेक प्रमाण मिले कि कवि चचा अधिकतर काशीमें ही निवास करते थे। सम्भव है यही उनका जन्मस्थान रहा हो। आश्चर्य है कि उनकी रचनाओंमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। केवल एक स्थलपर उन्होंने इतना कहा है—

जाहिर जहान में उजागिर जुगराफिया में
फरद हजारन में कामी सहर है।

अधिक खेद मुझे इस बातका है कि इनके असली नामका पता मैं लाख कोशिश करनेपर भी न लगा सका। इनका नाम कुछ तो अवश्य ही रहा होगा। कीटाणुओं तकके नाम होते हैं, ये तो मनुष्य थे। बिना नामकी संसारमें केवल एक उँगली है पर उसका भी नाम अनामिका है। 'चचा' तो केवल इनका उपनाम था, पर इनके पिता इस नामसे इन्हें कदापि न पुकारते रहे होंगे—इसका मुझे पूरा विश्वास है। इसलिये चचाके अतिरिक्त इनका कोई-न-कोई नाम अवश्य रहा होगा। शायद भविष्यमें इस विषयपर कोई कुछ प्रकाश डाल सके।

कवि चचा ब्राह्मण थे। काव्यरचना इनका दिल-बहलाव था, पर व्यवसाय था पुरोहिती। पुरोहितीके सिलसिलेमें इनके पेट-का रक़बा बहुत बढ़ गया था और ये भोजन अत्यधिक करने लगे थे। किम्वदन्ती है कि वृद्धावस्थामें ये किसी यजमानके यहाँ भोजन करने गये। वह खिलाते-खिलाते थक गया पर इनका पेट न भरा। तब उसने रुक-रुक कर परसना शुरू किया। उसे हाथ ढीला करते देख इन्हें बुरा लगा और इन्होंने कहा—

पेट पुरातन पाटन हौं
कछु झोंकत हौं नहिं अन्ध कुँआ में।

जेंइ भले जगदीस मनाइ
करैं वकसीस असीस दुवा में ॥
बृद्ध भयो बल थाकि गयो
कछु खान रहे जजमान युवा में।
पूर पछत्तर मालपुवा अरु
सेर सवा हलुवा गेलुवा में ॥

पुरोहितीका पेशा करते हुए भी यह बात नहीं थी कि देश-का दर्द इनके दिलमें न रहा हो। देशकी दशापर ये बराबर विचार करते रहते थे। इनकी रचनाओंमें इसकी झलक यथेष्ट रूपमें मिलती है।

हम भारतवासियोंकी एक साधारण प्रवृत्ति है कि अपने वर्तमानकी ओर तो हम ध्यान नहीं देते वरन् भूतकालीन गौरव-का ही स्वप्न देखा करते हैं। कवि 'चचा' ने देखिये इसकी कैसी मीठी चुटकी ली है—

वीर बड़े बलवान रहे
वर बुद्धि रही बहु युद्ध सम्हारे।
पूरन पुंज प्रताप रहे
सद्ग्रंथ रचे शुभ पंथ सँवारे ॥
धाक रही धरती-तल पै
नरपुंगव थे पुरुषारथ धारे।
बापको बापके बापके बापके
बापके बापके बाप हमारे ॥

उन सामाजिक कुरीतियोंकी भी इन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की है जिनकी ओर हमारा समाज विदेशी शासनके प्रभावसे अंधा होकर अग्रसर हो रहा है। खासकर स्त्रियोंको पाश्चात्य ढंगकी स्वतन्त्रता देनेके ये कट्टर विरोधी थे। एक जगह इन्होंने कहा है —

पिल्ला लीन्हें गोदमें मोटर भईं सवार।
अली भली घूमन चलीं किये समाज सुधार॥
किये समाज सुधार हवा योरपकी लागी।
शुद्ध विदेशी चाल-ढाल सों मति अनुरागी॥
मियां मचावैं सोर करैं अब नौकर चिल्ला।
पूत धाय के गोद, खेलावैं बीबी पिल्ला॥

जान पड़ता है कि कुछ दिन बीतनेपर इन्हें पुरोहितीके धन्धेसे विरक्ति-सी होने लगी। मित्रोंने भी कहा कि आप इतने अच्छे कवि होते हुए क्या इस पुरोहितीके झमेलेमें पड़े हुए हैं, किसी राज दरबारमें चले जाइये, वहाँ आपका आदर होगा। यह बात इन्हें पसन्द आ गयी और ये किसी बड़े आदमीका आश्रय ग्रहण करनेके लिये घरसे निकल पड़े। संयोगसे एक राजा साहबसे भेंट हो गयी। राजा साहब महामूर्ख थे पर उन्होंने सोचा कि मेरे यहाँ हर तरहके लोग नौकर हैं—हिंजड़े हैं—कथक हैं—भाट हैं—कव्वाल हैं, चलो एक कवि भी रख लूँ। कवि चच्चा पुरोहितीसे इतने आजिज आ गये थे कि उन्होंने भी आगा-पीछा न सोचा, इनके यहाँ रह गये।

कुछ ही महीने बीते थे कि राजा साहबके यहाँ एक बहुत बड़े मेहमान आये। राजा साहबने उनकी बहुत खातिर की। ताशका, मदारीका, इन्द्रजालका खेल हुआ, नाच हुआ, मुजरा हुआ, लावनी हुई, कजली हुई और अन्तमें कवि 'चचा' की भी पुकार हुई। वे जल-भुन कर खाक हो गये। कविता न हुई एक खेल-तमाशेकी चीज हुई! मानो कविता कोई बँदरिया थी और कवि चचा उसके नचानेवाले समझे गये!

राजा साहबने कहा—'कवि जी! आप भी कुछ कढ़ाइये।'

इस 'कढ़ाइये' के शब्दने तो जलेपर नमक छिड़क दिया। कढ़ाइये! क्या खूब!! मानों सोहर कढ़ाना था। कवि चचाके क्रोधका ठिकाना न रहा। बोले—'कढ़ाता हूँ सुनिये:—

> खोंचि पों टुकड़ा खवै जन बाझे तुकड़।
> नहिं निरखत मैथि ताणों में ढेरें घुरड़॥
> जुटैं हलाहल यार मिलैं औ रंगी फक्कड़।
> जहँ भांड़ बकबाद तहँ पुन गावैं तुकड़॥

इस तुकबन्दीका आशय इतना स्पष्ट था कि राजा साहब भी समझ गये। उस वक्त तो बात वहींपर खतम हो गयी पर मेह-मानके चले जानेपर कवि चचाको भी राजा साहबने रास्ता बताया। ऐसे ढीठ आदमीको कौन नौकर रक्खेगा!

कवि चचा बड़े बेलौस और आत्माभिमानी पुरुष थे।

स्वयं कविताके अच्छे पारखी तो थे ही, कवियोंका आदर भी करते थे। मानव समाजमें कवियोंके स्थानको बड़ा महत्वपूर्ण समझते थे, कम-से-कम नीचेकी पंक्तियोंसे यही सिद्ध होता है—

बिनु गोड़ेकी खाट बिना कोड़ेका घोड़ा।
बिनु लोढ़ेकी भंग जंगमें साहस थोड़ा॥
बिनु जोड़ेकी रैल मुसाफिरके पग फोड़ा।
बिनु तोड़ेका धनी भातमें निकसै रोड़ा॥
'चच्चा' कहैं कविजन सुनौ सभ्य सभा बिनु आपके।
ये सब निश्चय जानिये कारन हैं सन्तापके॥

दोष-रहित संसारमें केवल एक परमात्मा है। जब बिना शरीरका कामदेव—देवता होते हुए भी—अवगुणोंकी खान बना रहा तब भौतिक शरीर वाले संसारी जीव कैसे अवगुण-हीन हो सकते हैं? कवि चचामें जहाँ अनेक गुण थे वहाँ एक दोष भी था, वे विजयाके परम भक्त थे। विजयाको भगवानकी विभूति समझते थे। सबको सब कुछ हो पर उन्हें विजया हो, चाहे और कुछ भी न हो। कहते हैं—

गैया गिरहस्थको रुपैया रोजगारिनको
केवटको नैया और मैया होय बच्चाको।
तिरियाको छैया होय दया-मया सबै होय
पित्तरनको गया होय विजया हो 'चच्चा' को॥

उनकी समझमें भगवान् शंकर भी विजयाके बनाये बने हैं—

कालकूट कण्ठके कण्ठस्थ नीलकण्ठ भयो
गौरि जरत जग विष ज्वाला विषम सों।
लहैको समानता तिहारी जे कोपि कियो
भस्म भसम रतिको अस्म भसम सों॥
पद्मां प्रताप तेरे लरे वहुलेरे नाश
पापको पतित हैं अपावन जे हम सों।
मोक्ष 'नाथ'के आजु कीन्हि परयो सांचो भेद
मातो प्रभुताई पर निजगारो इस सों॥

हिन्दू-मुसलिम सम्बन्धके विषयमें कवि नाथके विचार बहुत उदार नहीं थे, पर तुच्छ अवश्य थे, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि ऐसे विचारवाले भारतीय राष्ट्रकी उन्नतिके पथमें अकसर रोड़े अटकाते हैं। वे जातीयताके पुजारी थे। पता नहीं मुसलमानोंको वे म्लेच्छ पुकारते थे या नहीं पर खुद काफिर पुकारे जानेके वे बड़े खिलाफ थे। मुसलमानोंके सम्बन्धमें उनके विचार कुछ इस प्रकारके थे—

दूध फाटे पे मिले तो मिले
पर चित्त फाटे मिलगात हैं आखिर।
लाख उपाय करो न मिले
जल तेल सुभाय सबै जग जाहिर॥
मन्दिर के पद मूँदि धरो
बड़ पीपर काटि धरो केहि खातिर।
संग निसंक बजावहु क्यों नहिं
काफिर हैं हम मेल कहां फिर॥

सन् १९१६ या १७ के पितृपक्ष में कवि चच्चाकी मृत्यु काशीमें ही हुई; उस समय इनकी अवस्था ७० और ७५ के बीचमें थी। शामके वक्त एक सँकरी गलीसे होकर ये गुजर रहे थे। पीछेसे म्यूनिसिपैलिटीका कूड़ा ढोनेवाला एक भैंसा दौड़ता हुआ आया। ये आगेकी ओर भागे तो सामने एक साँड़ मिला जिसने इन्हें सींगपर उठाकर पटक दिया। लोगोंने डोलीमें डालकर इन्हें घर पहुँचाया जहाँ घंटे डेढ़-घंटे बाद इनका शरीर छूटा। मरनेके पहिले कुछ मित्रोंके पूछनेपर इन्होंने अपनी दुर्घटनाका हाल इस प्रकार कहा—

कालको कराल गाल घाले जग जीव जेते
लछमी को पीव लेत पूत लेत रांड़ के।
मीच है नगीच घरी, जानैं हरि कौन घरी,
प्रान जू पयान करैं देह-गेह छांड़ के॥
पंचन सों याचना छमाकी निज भेद कहौं
कविता है आड़ कियो काम सदा भांड़के।
भैंसा चढ़ि आये यम स्वागत निमंत्रण लै
'चच्चा' तब संग चले सींग चढ़े सांड़ के॥

सज्जनो! मैं आप लोगोंका काफी समय ले चुका। यदि मैं कविके जीवनकी सब रोचक घटनाओंका दिग्दर्शन मात्र कराने लगूँ या इनकी उन रचनाओंको ही सुनाने लगूँ जो अभी तक प्राप्त हो सकी हैं तो सबेरा हो जाय। लेकिन कविता नौटंकी नहीं है कि भले आदमी सारी रात जागकर इसका मजा लें।

कवि चचाके सम्बन्धमें एक बात आप लोगोंको अवश्य खटक रही होगी। उनके ऐसे सुयोग्य कविके बारेमें—जिसे मरे भी अभी अधिक दिन नहीं हुए—अनेक ज्ञातव्य बातोंका काफ़ी पूछताछ करनेपर ठीक पता न चलना बड़े आश्चर्यका विषय है; पर ग़ौर करनेपर कारण स्पष्ट हो जाता है। कवि चचा एक सीधे-सादे व्यक्ति थे, सभा-सोसायटियोंसे घबराते थे, तू-तू मैं-मैं से दूर भागते थे, अपने कामसे काम रखते थे। न ऊधोका लेना और न माधोका देना—यही उनके जीवनकी रूपरेखा थी। भला ऐसे आदमी को इस विज्ञापनके युगमें पैदा होनेकी क्या आवश्यकता थी! कहाँ उनके ऐसा निर्लेप आदमी और कहाँ यह धाँधलीका ज़माना! न पासमें पैसा, न किसी बेवकूफ़ पैसे वालेके पास अपनी पहुँच, न साहित्यिक गुण्डई, न चार लेखकोंसे आपसदारी और न इसके हामी कि मेरी डफली तू बजा तो तेरा राग मैं अलापूँ। आजकल बिना इन गुणोंके सफल लेखक या कवि विरले ही हो सकते हैं। कवि चचा यह सब समझते थे, शायद इसीसे उन्होंने अपनेको गुप्त रक्खा। उनके साथ नित्यके उठने-बैठने वाले भी जो दो-एक थे वे भी नहीं जान सके कि वे कहाँसे आकर काशीमें बसे थे और उनका असली नाम क्या था। पारिवारिक झगड़ोंने भी उन्हें बुरी तरह पीस डाला था। बेफ़िक्री उन्हें कभी नहीं मुयस्सर हुई;

अगर होती तो उनकी प्रतिभाने न जाने और क्या कर दिखाया होता। वे स्वयं ही कहते हैं—

सैन मिलैं नरनाहनको
चढ़ि धावें अनेकन राज ढहावैं।
रैन मिलैं जो छबीली सुछैलको
मोद महान लहैं औ लहावैं॥
बैन कही जो कही सो सही
एक आस यही कविराय कहावैं।
चैन 'चच्चा' को मिलै जो अगर
तो धरा पै कवित्तकी धार बहावैं॥

एक बात और सुनाकर मैं अब बस करूँगा। कवि चच्चा मनुष्य जीवनको हँसी-खेल नहीं समझते थे, पर उसे हँस-खेल कर बिता देनेके वे पक्षपाती थे। हँसनेके वे आदी थे, यहाँ तक कि अपने ईश्वरसे भी हँसी करनेमें नहीं चूके। सुनिये—

नीच हौं निकाम हौं नराधम हौं नारकी हौं
जैसो तैसो तेरो हौं अनत अब कहां जांव।
ठाकुर हौ आप हम चाकर तिहारे सदा
आपुके बिहाय कहो मोको और कौन ठांव॥
गजकी गुहार सुनि धाये निज लोक छांड़ि
'चच्चा' की गुहार सुनि भयो कहा फील-पांव।
गनिका अजामिलके औगुन गन्यो न नाथ
लालन उधारि अब कांखत हमारे दांव॥

२

भट्टीमें सन्नाटा

साहित्यके बन्दे सभी थे। कोई लेखक था, कोई समालोचक था; कोई कवि था और कोई नाटककार था। खूबी इस बातकी थी कि एक मैदानमें इतने शेर एक साथ इतनी देर तक बैठे रहे, पर भिड़न्तकी बारी न आयी।

आशङ्का अवश्य थी। महावीर-दलके कुछ स्वयंसेवक बुला लिये गये थे और उन्हें सहेज दिया गया था कि किसीको यदि आस्तीन समेटते या कमर कसते देखो तो उसे फौरन सभासे अलग कर दो।

श्री गलगंज महासमिति नगरकी प्रमुख साहित्यिक संस्था है। आज उसीका एक असाधारण अधिवेशन है। सभापति हैं गद्य-गदाधर पद्य-पयोनिधि पं० धुरंधर शर्मा। व्याख्याता हैं साहित्याचार्य साहित्यानन्दसंदोह पं० बिलवासी मिश्र।

बात यों थी। इधर कुछ दिनोंसे हिन्दी-संसार एक विशाल भटियारखाना बन गया था। खूब हो-हल्ला मच रहा था। देव और बिहारी, घासलेट और चाकलेट, सब इसके आगे फीके पड़ गये थे।

सारे झगड़ेकी जड़ थे पं० बिलवासी मिश्र। लोग कहते थे कि उन्हें क्या पड़ी थी कि वे कवि 'चचा' को हिन्दी-संसारकी छातीपर ढकेलने गये। कुछ विरोधियोंकी राय थी कि वे यदि कवि 'चचा' को वापस न ले लें तो साहित्यिक जमावड़ोंमें उनका पान-पत्ता बन्द कर दिया जाय।

दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे—और उनकी संख्या कम न थी—जो बिलवासीजीको पुचारा देते थे, और कवि 'चचा' विषयक खोजके लिये उन्हें धन्यवादका पात्र समझते थे। इस पार्टीका नाम था 'चच्चा' पार्टी। दूसरीका कोई नाम न था पर तुक मिलानेके लिये कुछ लोग उसे 'बच्चा' पार्टीके नामसे पुकारते थे।

इन दोनों पार्टियोंमें अच्छी बमचख चली। बरसोंके गुराने दोस्त बेगाने हो गये। अखबारों द्वारा लोग एक दूसरेपर महीनों तक विष उगलते रहे। तड़बन्दी यहाँ तक बढ़ी कि लड़ाईकी नौबत पहुँच गयी।

एक शामको चौकके चौराहेपर लाला राघोराम और पं० खूबचन्दमें मुठभेड़ हो गयी। दोनों दो पार्टीके थे। सूत्र-पात बहससे हुआ। बहसका क्रमिक विकास होते-होते कहा-सुनी हुई, फिर गाली-गलौज, फिर हाथापाई, फिर धर-पटक।

कुछ विनोदी लड़कोंने खबर उड़ा दी कि चौराहेपर दो साँड़ लड़ पड़े। नाकेकी पुलिसने थानेमें रपट लिखायी कि

चौराहेपर दो साहित्यिक लड़ पड़े। दूसरे दिन स्थानीय दैनिकने दोनों समाचारोंका समन्वय करते हुए बड़े-बड़े अक्षरोंमें छापा—
"चौक में दो साहित्यिक साँड़ोंकी लड़ाई"—।

परिणाम अच्छा हुआ। राय होने लगी कि अब जिस तरह हो इस झगड़ेका तत्ताथम्बा हो ही जाना चाहिये। बीच सड़कों-पर मल्लयुद्ध अच्छा नहीं।

श्री गलगंज महासमितिने इस अवसरपर सराहनीय कार्य्य किया। अपना असाधारण अधिवेशन करके उसने पं० बिलवासी मिश्रको मौका दिया कि वे कवि 'चक्र' को प्रमाणोंकी दृढ़ भित्तिपर स्थापित कर सकें और अपने विरोधियोंके हृदयसे सन्देहका काँटा दूर कर सकें।

आज वही शुभ अवसर उपस्थित था। साहित्यसेवियोंकी एक भारी भीड़ उमड़ आयी थी। सभापतिके प्रारम्भिक भाषण-के उपरान्त बिलवासीजीकी पुकार हुई, और वे आगे आये। वे जानते थे कि आज उनकी अग्निपरीक्षा है पर वे बिल्कुल शांत थे, मानों प्रशान्त महासागरको मथ कर निकाले गये हों। उनके विरोधियोंपर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा—वे दाँतों उँगली दबा-कर रह गये।

बिलवासीजीका आत्मविश्वास ही उनकी सफलताका मूल मंत्र है। आज एक-से-एक साहित्य-महारथी उपस्थित थे। केवल

आगेकी एक क़तारमें बिलवासीजीने देखा कि लोलजी, अनमोलजी; दीपजी, महीपजी; प्रलयजी, प्रमत्तजी; प्रवीणजी, धुरीण जी; अनन्यजी, जघन्यजी आदि अनेक सुकवि और सुलेखक बैठे थे। कहनेका तात्पर्य्य यह कि बिना उपनामका एक भी सामान्य जीव वहाँ नहीं था। ऐसी सभामें सौम्य स्वभावसे और संयत भाषामें पतेकी बात कहना बिलवासीजीका ही काम था।

वे अपने स्थानसे उठे और सभापतिके टेबुलके पास जा कर खड़े हो गये। लाला घासीरामने आगे बढ़ कर उनके पास पानका डब्बा रख दिया—बिलवासीजीको अन्य वक्ताओंकी तरह पानीके गिलासकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

इस समय अगर कोई होनहार संवाददाता इस सभाकी रिपोर्ट लिखता तो शीर्षक देता 'सट्टीमें सन्नाटा'। यही सभा-भवन जो अभी एक मिनट पहिले कोलाहलमें डूबा हुआ था, अब यकायक एक निर्जन वनस्थलीके समान निस्तब्ध हो गया।

बिलवासीजीको अपना यह प्रभाव देख कर सन्तोष हुआ। उन्होंने मुसकरा कर इस मूक स्वागतको स्वीकार किया और कहा—"सज्जनो! अपने मस्तिष्कमें लहराते हुए विचार-सागरको मथकर जिन तत्व-रत्नोंको मैं समय-समयपर प्राप्त करता रहता हूँ उनमें एक यह भी है कि जो दलबन्दियोंसे दूर रहे वह साहित्य-सेवी नहीं।

मैं अपनेको एक अदना साहित्य-सेवी मानता हूँ। मेरी एक मनोकामना है—ईश्वर उसे पूरी करे—कि मेरे बाद मेरे बच्चे सर उठा कर यह कह सकें कि पिताजी यद्यपि नालायक़ थे, निकम्मे थे, निखट्टू थे, पर साहित्य-सेवी थे। मैं देखता हूँ कि आज मेरी यह लालसा भी प्रातःकालीन ओसकी तरह हवामें मिल रही है। मुझसे कहा गया कि तुम 'चच्चा' पार्टीका नेतृत्व ग्रहण करो; पर मुझे नहीं करना पड़ा। कारण यह था कि मैं साहित्यिक तड़बन्दीसे उसी प्रकार घबराता हूँ जैसे आतशबाजीसे कुत्ते।

यह दूसरी बात है कि आज मैं आपके सामने कवि 'चच्चा' की पैरवी करनेके लिये उपस्थित हुआ हूँ। यह तो मेरा कर्त्तव्य है कि आपके हृदयसे सन्देह-रूपी चोरको मैं मार भगाऊँ। यह जानकर कि कुछ लोग महाकवि 'चच्चा' के विषयमें सन्देह कर रहे हैं मुझे हर्ष और आश्चर्य दोनों हुआ; हर्ष उनके साहसपर और आश्चर्य उनकी बुद्धिपर।

एक सज्जनका कहना है कि 'चच्चा' यदि पेटके लिये पुरोहिती करते थे तो वे कवि कभी न रहे होंगे; क्योंकि पुरोहिती और कविताका मेल, थाटी और गँडेरीके मेलसे भी बुरा है। यह क्या अनोखा तर्क है! क्या परमात्माकी रचनायें विचित्रतासे खाली हो गयीं? जो ईश्वर तिलको ताड़, राईको पर्वत

और प्रूफ़रीडरको सम्पादक बना सकता है वह क्या एक पुरोहितको महाकवि नहीं बना सकता ?

कौतूहल और सन्देहकी प्रवृत्तियाँ अपने-अपने स्थानपर अत्यन्त प्रयोजनीय हैं—उन्होंने मनुष्य-जातिको प्रगतिके पथ-पर खदेड़नेमें अकसर चाबुकका काम किया है; पर इसकी एक सीमा है। जब आप महाकवि 'चच्चा' के विषयमें सन्देह करना आरम्भ करते हैं तब आप औचित्यकी सीमाका उल्लंघन कर जाते हैं। यों तो सन्देह करनेका आपको अधिकार है—कुछ लोग स्वयं परमात्माके अस्तित्वमें सन्देह करते हैं। एक समय सीताके सतीत्वपर भी किसीने सन्देह किया था।

इस विषयको मैं अधिक तूल देना नहीं चाहता। कवि 'चच्चा' पर किये गये आक्षेपों और सन्देहोंका उत्तर मैं उन्हींके शब्दोंमें यों दे सकता हूँ—

> नेकु 'चच्चा' चित सोच नहीं
> यदि आज अबूझ उड़ावहिं ठट्ठ।
> कालिह परों कि परों धरु धीर
> कहैंगे सबै मोहिं सामस पट्ठ!

इन शब्दोंसे कविकी आशावादिता तो स्पष्ट है ही, साथ ही उसके एक और गुणका भी आभास मिलता है। वह है उसकी क्षमाशीलता; अपने विरोधियोंको वह केवल 'अबूझ' कह

कर छोड़ देता है। आजकलकी परिपाटीके अनुसार उनकी सात पुश्त तक नहीं चढ़ जाता।

सज्जनो! मुझे आशा थी कि शिवसिंह-सरोजमें कवि 'चच्चा' का उल्लेख अवश्य मिलेगा। मैंने सरोजके नये पुराने अनेक संस्करण देखे पर इनका नाम तक न मिला। इसका मुझे महान् आश्चर्य है क्योंकि मेरे पास यथेष्ट प्रमाण है कि बाबू शिवसिंह सेंगरसे महाकवि 'चच्चा' का एक बार साक्षात् हुआ था।

उन दिनों ठाकुर शिवसिंहजी उन्नावमें पुलिस इंसपेक्टर थे और महाकवि 'चच्चा' उन्हीं दिनों किसी आश्रयदाताकी खोजमें अवधके ताल्लुकेदारोंके यहाँ मारे-मारे फिर रहे थे। ये लखनऊ, सीतापुर, लखीमपुर वगैरःसे झख मारते हुए उन्नाव पहुँचे और एक मन्दिरमें ठहर गये। शिवसिंहजीको खबर मिली तब उन्होंने अपने एक अर्दलीको भेजा कि अमुक स्थानमें एक कवि ठहरे हैं, उन्हें बुला लाओ।

अर्दली था मुसलमान, वह जानता भी न था कि कवि किसे कहते हैं। ठाकुर साहबसे तो पूछनेका साहस हुआ नहीं, वह दौड़ा हुआ उस मकतबके मौलवीके यहाँ गया जहाँ उसने अलिफ-बे-पे पढ़ा था। मौलवी साहब भी कविका अर्थ नहीं जानते थे, पर उन्हें एक अस्पष्ट धारणा-सी थी कि कवि किसी

ऐसे व्यक्तिको कहते हैं जो बिना कामकाजके इधर-उधर मारा-मारा फिरता है ।

अर्दलीको भी कविका यही अर्थ ठीक जँचा । जब इन्स-पेक्टर साहबने एक ऐसे आदमीको बुला भेजा है जो बिना रोजी या रोजगारके बाहरसे आकर एक मन्दिरमें ठहर गया है तब वह हो-न-हो कोई आवारा ही होगा ।

वह बताये हुए पतेपर कवि 'चच्चा' के पास पहुँचा । वे उस समय लँगोट पहने हुए भङ्ग पीस रहे थे । अर्दलीने कहा—'चलो तुम्हें बड़े दारोगाजीने बुलाया है ।'

कवि चच्चा ने घबरा कर पूछा—'अजी कौन दारोगा ?'

'बड़े दारोगा साहबने तुम्हें फ़ौरन बुलाया है ।'

कवि 'चच्चा' के दूरके रिश्तेके एक फूफा थे जो कानपुरमें पुलिस विभागमें नौकर थे । उन्होंने सोचा कि शायद वही तरक्की पाकर उन्नावमें दारोगा हो गये हैं । निश्चय करनेके लिये उन्होंने पूछा—'जरा दारोगा साहबका हुलिया तो बताओ । नाटेसे हैं ? चियौं-सी आँखें हैं और घुघ्घी-सी नाक है ?'

अर्दलीने बिगड़ कर कहा—'अबे चलता है कि बैठे-बैठे गुस्ताख़ीकी बातें करता है ?'

चच्चा ने कहा—'ठहरो भैया ! अभी चला । भङ्ग तो छान लेने दो । थोड़ा दारोगा साहबके लिये भी ले चलूँगा ।'

कवि 'चच्चा' ने यह बात यद्यपि बिल्कुल सरल भावसे कही थी पर अर्दलीने समझा यह धूर्त बातें बना रहा है और सीधेसे चलनेका नाम न लेगा। उसे अफ़सोस हुआ कि आते समय वह थानेसे कोई रस्सी या हथकड़ी न लाया। उसने इधर उधर निगाह दौड़ायी तो सामने डारेपर कवि 'चच्चा' की धोती सूखती हुई दिखायी पड़ी। लपक कर उसने धोती उतार ली, उसका फन्दा बना कर उसने कवि 'चच्चा' के गलेमें डाल दिया और उन्हें खींचता हुआ ले चला।

कवि 'चच्चा' के लिये यह एक बिल्कुल नया अनुभव था। इस दशामें उन्होंने अपनेको कभी न पाया था। उन्हें प्रेमसे कोई बुलाता था तो कच्चे धागेसे खिंचे चले जाते थे पर मोटे मारकीनकी धोतीसे खिंच कर आज तक वे कहीं नहीं गये थे। उनके गलेमें धोतीका फन्दा और कमरमें सिर्फ़ एक लंगोट था। किसी कविका ऐसा निराला ठाट आज तक किसीने न देखा होगा। बड़ासे बड़ा क्रान्तिकारी कवि भी शायद इस वेषभूषाको पसन्द न करता।

कवि 'चच्चा' ने भी नहीं पसन्द किया। यह स्पष्ट था कि गलेमें धोती और कमरमें लंगोटका फ़ैशन उन्हें नहीं पसन्द आया। इस पोशाकमें मन्दिरसे बाहर निकलनेमें उन्हें आपत्ति थी। उन्होंने अड़ना चाहा, अकड़ना चाहा, पर सब बेकार गया। कोई तदबीर काम न आयी।

अर्दलीका पक्ष प्रबल था। वह कवि 'चच्चा' को खींच ले चला। रास्तेमें जिन लोगोंने देखा उन्होंने यही समझा कि कछु नामका मशहूर चोर गिरफ़ार हो गया, जिसने सरकारी खजानेसे सिर्फ दो रात पहिले ताला तोड़ कर कई हजारकी थैली उड़ायी थी।

पहिले तो ठाकुर शिवसिंहजीने भी यही समझा। उन्होंने कवि 'चच्चा' से कहा—'क्यों बे कलुआ! चला था पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंकने?' लेकिन पाँच ही मिनटमें सारा भेद खुल गया। जब उन्हें मालूम हुआ कि ये कविवर 'चच्चा' हैं तब उन्होंने बहुत खेद प्रकट किया, अपने अर्दलीपर जुर्माना किया और कवि चच्चासे क्षमाकी याचना की। उन्होंने कवि चच्चा को अपने ही यहाँ ठहराया और बड़ा आदर-सत्कार किया।

कवि 'चच्चा' ने शिवसिंहजीको क्षमा कर दिया पर पुलिस-के दुर्व्यवहारसे वे बड़े खिन्न हुए थे। बात ही बातमें उन्होंने शिवसिंहजीसे पुलिसकी प्रशंसा इन शब्दोंमें की थी—

प्रलयंकर रूप धरैं छिनमें
भयसें जिनके डरपे सब ही हैं।
अरिको नहिं ठाँव महीमें कहीं
जनपै अपने रछपाल सही हैं॥
अपशब्द हलाहल कण्ठ किये
तजि शूल लिये करमें पनही हैं।

गङ्कांज पुलीसके मौन भयौ
हम लोग कहाँ के ईश नहीं हैं ॥

इनकी प्रतिभाका चमत्कार देखकर ठाकुर शिवसिंहजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने इनसे कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। कवि 'चञ्चा' ने उत्तर दिया कि जो कुछ सेवा करनी हो स्वयं करियेगा, कृपा करके अपने अर्दलीसे न कराइयेगा।

ठाकुर साहबने हँसकर कहा—'अजी नहीं! मैं और किस योग्य हूँ पर इतनी सेवा आपकी कर सकता हूँ कि आप यदि हमारे विभागमें नौकरी करना चाहें तो मैं बड़े साहबसे सिफारिश करके आपको किसी पुलिस चौकीकी जमादारी दिला दूँ।'

कवि 'चञ्चा' को यह भय था कि वे क़ायदा क़ानून बिल्कुल नहीं जानते, इसलिये पुलिसकी नौकरीके अयोग्य साबित होंगे; लेकिन ठाकुर साहबने यह कह कर उन्हें उत्साहित किया कि पुलिसको क़ायदा-क़ानून जाननेकी जरूरत ही नहीं है, वह अपना क़ायदा-क़ानून स्वयं बनाती है।

शिवसिंहजीने बहुत आग्रह किया पर कवि 'चञ्चा' ने उनके प्रस्तावको ठुकरा दिया। वे अपने सिद्धान्तके पक्के थे, पुलिसकी नौकरी करके पुरोहितीसे भी नीचे गिरना नहीं चाहते थे। उनकी इच्छामें शिवसिंहजीको दुराग्रहकी गंध आयी और वे कुछ नाराज हो गये। सम्भव है इसी कारणसे उन्होंने 'सरोज' में इनका जिक्र न किया हो।

काशी लौटकर कवि 'चच्चा' ने अपनी स्त्रीसे सारा हाल कहा। उनका पुलिसकी नौकरीपर लात मार कर चले आना उसे अच्छा नहीं लगा। उसने भी बहुतकुछ ऊँचा-नीचा समझाया पर वे अपनी टेक पर अड़े रहे। जिन तर्कों द्वारा उनकी स्त्रीने उन्हें डिगानेकी कोशिश की थी उनका उल्लेख उन्होंने स्वयं इस प्रकार किया है—

वैद हकीम मुनीम महाजन
साधु पुरोहित पण्डित पोंगा।
लेखक लाख मरैं बिनु अन्न
'चच्चा' कविता करि का सुख भोगा॥
पाप कि पुन्न भलो कि बुरो
सुरलोक कि रौरव कौन जभोगा।
देस मरै कि बुलात पिया
हरनाथ हिया तुम होहु नरोगा॥

२

सुखी जीवन

बहस यह छिड़ गयी थी कि संसारमें सुखी कौन है, और सुख किस चीजका नाम है। लाला झाऊलालकी राय थी कि संसारमें सुखी वही है जिसकी आमदनी दो पैसा हो और खर्च पौने दो पैसा। लाला गल्लूमलकी राय थी कि जो भूखसे दो रोटी ज्याद: खाकर हजम कर सके वही संसारमें सुखी कहलाने योग्य है।

पं० बिलवासी मिश्रने सुखी जीवनकी जो व्याख्या की वह नये मार्केकी थी। उन्होंने कहा—"सज्जनो! सुख और दुःख, दुःख और सुख, यही हमारे और आपके जीवनके ताने-बाने हैं। इसी ताने-बानेसे हम सब धूप-छाँहको बुनते हैं जिसका नाम मनुष्य-जीवन है। प्रश्न यह उठा है कि सुखी जीवन कहते किसे हैं। मेरी रायमें सुखी जीवन तब कहना चाहिये जब इसमें अपनी गणना हो, बसमें की हो, बकतमें ठनाठन हो, हँसमुख स्वभाव हो और नस-नसमें बेफिक्री हो। गेह अपना हो—किराये का न हो, देह अपनी हो—डाक्टरोंकी न हो, और नेह ऐसे

लोगोंसे हो जो अपनेको निकम्मा न समझते हों। सुखी वह है जो न कभी छब्बे बननेकी कोशिश करे और न दूबे बने। सुखी वह है जो आशासे सदा दूर रह कर..............."

'पण्डितजी!' लाला मल्लूमलने बिगड़ कर कहा—'आप चुप रहिये। आपकी बात मैं नहीं सुनना चाहता।'

'पण्डितजीने चकपका कर पूछा—'क्या आप बतानेका कष्ट करेंगे कि क्यों?'

'आपने जीवनको सुखी बनानेके लिये आशासे दूर रहने की सलाह दी है। इस सलाहको मैं कदापि न मानूँगा। मेरे लिये यह केवल असम्भव ही नहीं वरन् मूर्खतापूर्ण है। मैं आशा-को अपने जीवनसे दूर नहीं कर सकता।'

'आखिर क्यों?'

'इसलिये कि आशा मेरी स्त्रीका नाम है।'

अपनी बातपर सबको मुसकराते देख लाला मल्लूमलको खयाल हुआ कि लोग उन्हें झूठा समझ रहे हैं। इसलिये उन्होंने फिर कहा—'आप लोग हँसते क्यों हैं? मैं सत्य कहता हूँ, मेरी स्त्रीका नाम आशा है। वह दो बहिन हैं, बड़ीका नाम आशा और छोटीका नाम बताशा है।'

इस बातपर कहकहेका तूफान ऐसा उठा कि कुछ देरमें शान्त हुआ। पं० बिलवासी मिश्रने अपनी हँसी रोकते हुए कहा—

"सज्जनो ! सुखी जीवनके लिये सबसे अधिक आवश्यक है भरपेट भोजन। इस विषयमें दो राय हो ही नहीं सकती। जिस प्रकार बिना पेंदेके जलपात्रकी कल्पना आप नहीं कर सकते उसी प्रकार बिना भरपेट भोजनके सुखी जीवनकी कल्पना भी नहीं हो सकती। महाकवि 'चच्चा' ने इसी सम्बन्धमें एक बार कहा था—

> जैसो जहां जब जगा लहौं
> मुल्ला रजपूत कि जाट कि बागा।
> भोजको राज न चाहैं 'चच्चा'
> यदि भोजन रोज मिलै बिनु मागा॥

आप लोग स्वयं इस बातका अनुभव कर चुके होंगे और नित्य प्रति करते होंगे कि पेटका सुखी जीवनसे अत्यन्त अन्तरङ्ग सम्बन्ध है। पेटका प्रश्न एक विकट समस्याके रूपमें मनुष्य-मात्रके सामने सदा उपस्थित रहता है। आश्चर्यका विषय है कि इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषयपर कविगणको कविता कर-नेकी कैसे सूझी!

पेटको बुराभला कह डालना तो एक साधारण-सी बात है। बेचारा ग़रीब मजदूर जो सुबहसे शाम तक जाँगर तोड़ने पर चार आने पैदा करता है वह भी रातमें भूखकी मरोड़से व्यथित होकर पेटको दो गाली सुना देता है—और दूसरेका पेट काटकर अपना पेट भरनेवाला मोटा मिल-मालिक, या सूदख़ोर सेठ, या ज़ालिम

जमीन्दार भी जरूरतसे ज्याद: खाकर श्रपच होने पर पेट ही को कोसता है। पर इसका विचार कोई नहीं करता कि सृष्टिके आदिसे और सृष्टिके अन्त तक अगर किसी चीजने हमारा साथ दिया है और देगा तो वह पेट ही है। धर्म-कर्म, आचार-विचार,—यहाँ तक कि स्वयं सृष्टिका आकार-प्रकार भी बदल गया पर पेट जो तब था वह अब है। महाकवि 'चच्चा' ने इसी बातको यों कहा है और खूब कहा है—

> बैल बनै पै मिलै दुरवा
> 　　कि मिलै भुरवा नहिं मोमिन मुल्ला ।
> रंक बनै रिरकौं बिनु अन्न
> 　　कि राउ बनौं करि दूधन कुल्ला ॥
> माँड़ मिलै कि मिलै दधि माखन
> 　　खाँड़ मिलै कि मिलै रसगुल्ला ।
> पेट अनन्त रहै नित नूतन
> 　　और सबै बिनसै जिमि बुल्ला ॥

सज्जनो ! सच पूछिये तो पूरी तौरसे पेटकी महिमा वही गा सकता है जिसे पेटका धन्धा न हो। मैं स्वयं पेटपर बहुत कुछ लिखने वाला था पर ऐसा पेटके चक्करमें पड़ा कि पेटकी बात पेट ही में रह गयी। एक बड़े अचम्भेकी बात है कि पीठ और पेट पुराने पड़ोसी हैं पर पीठकी मार सह जाती है लेकिन पेटकी मार नहीं सह जाती।

पेटके सम्बन्धमें जो कुछ कहा जा सकता था वह कवि लोग सदियों पहिले कह चुके; पर तब भी कुछ बातें ऐसी बच गयीं जिन्हें कवि 'चच्चा' के सिवा दूसरा कोई इस खूबीके साथ कह भी नहीं सकता था। यह मैं पहिले कह चुका हूँ कि उनका पेशा पुरोहितीका था, इसलिये सम्भव है पेट सम्बन्धी सब प्रकारके अनुभव प्राप्त करनेका जितना अच्छा साधन उन्हें था उतना अन्य कवियोंको न रहा हो। पुरोहितीका व्यवसाय ही कुछ ऐसा है कि पेटको हर समय चौकन्ना रहना पड़ता है—न जाने कब और कहाँ उसे अपने बलाबलकी परीक्षा देनी पड़ जाय।

कारण जो कुछ रहा हो पर यह ध्रुव सत्य है कि कवि 'चच्चा' ने इस विषयपर जो कुछ लिखा है वह लाजवाब है, अनुपम है, बेजोड़ है। सुनिये—

करनी अलीक नीक नेकर अनेक कियौं
आयु सिरानी तदपि पूरन पर्यो नहीं।
कारन निहारें नर बानर सों भ्रमत नित्य
औगुन कुकर्म कहो कौन कर्यो नहीं॥
एक सों मतंग औ पतंगको नचाइ डारै
जेते जीवधारी यातें कोऊ उबर्यो नहीं।
जुगन जुगादिम सों जाहिल ज्यों आलिम त्यों
भरि भरि हार्यो यहि खन्दक भर्यो नहीं॥

पहला पाठ

काशीकी 'कौतुक' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाको कौन नहीं जानता था। सालमें १२ विशेषांक निकालना इसीका काम था। देशमें नमक सत्याग्रह आरम्भ होते ही इसने अपना साँभर विशेषांक निकाला। प्रयागमें रामलीलाके अवसरपर हिन्दू मुसलिम दङ्गा समाप्त भी नहीं हुआ था कि इसने अपना सुरसा विशेषांक निकाल दिया। प्रधान सम्पादकके पुत्रकी बरही भी न बीती थी कि इसका सौरी विशेषांक निकल गया।

खेद है मार्च १९३२ में इस उपयोगी पत्रिकाका जीवनकाल समाप्त हो गया। इसके दो सम्पादक थे। एक रोज दोनों आपसमें लड़ पड़े और एक दूसरेपर पेपर-वेट फेंकने लगे। एक पेपर-वेट बहक कर बगलमें बैठे हुए संचालक महोदयके ब्रह्माण्ड पर जा गिरा। उन्होंने अपनी कच्ची गृहस्थीका खयाल करके 'कौतुक' को उसी क्षण बन्द कर दिया।

'कौतुक' का स्मरण मुझे इस समय एक खास वजहसे हो आया। उसके अन्तिम अंकमें पं० बिलबासी मिश्रका एक

लेख छपा था। लेख महाकवि 'चच्चा' के सम्बन्धमें था, और अत्यन्त गवेषणापूर्ण था। उससे उस महाकविके जीवनके एक अध्यायपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उसके आवश्यक अंशको मैं ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देता हूँ। बिलवासीजीने लिखा था—

ऐसा प्रसिद्ध है कि कवि 'चच्चा' जब सत्रह या अठारह वर्षके हुए तब उनके हृदयमें काव्यरचनाकी प्रवृत्ति जाग्रत हुई। लेकिन वह समय घोंघापन्थीका था। लोग कविता सीखनेके लिये एक गुरुका होना आवश्यक समझते थे। कवि 'चच्चा' भी इसी पुराने खयालके आदमी थे। उन्हें खबर लगी कि गङ्गा-के उसपार रेतीपर छप्पर डालकर एक बड़े प्रतिभाशाली कवि निवास करते हैं। उनकी टोह लेनेपर कई मजेदार बातें मालूम हुई। एक तो यह कि उनकी कुटीमें एक किनारे कुछ टीनके कनस्तर रखे हैं, किसीपर रस, किसीपर अलंकार, किसीपर नायिकाभेद आदि लिखा है। जिस कनस्तरपर जो लिखा है उसमें उसी विषयके ग्रंथ भरे पड़े हैं। जान पड़ता है इन कनस्तरोंकी संख्या बारह थी, क्योंकि उनके एक शिष्यने कवि 'चच्चा' से एक बार बड़े अभिमानपूर्वक कहा कि हमारे गुरुमहाराजने बारह कनस्तर विद्या पढ़ी है।

गुरुमहाराजके सम्बन्धमें दूसरी बात बड़ी विचित्र यह थी कि उन्होंने अपने जीवनसे गद्यका पूर्ण बहिष्कार कर रक्खा था।

कई बरससे उन्होंने यह व्रत ले रक्खा था कि पद्य छोड़ कर वे गद्यमें किसीसे बात तक न करेंगे, चाहे लाख अड़चन पड़े और बड़े-से-बड़ा अकाज हो जाय।

खैर, कवि 'चच्चा' ने इन्हींसे शिक्षा लेनेकी ठानी। भरणी-भद्रा बचा कर वे इनके यहाँ पहुँचे। देखा कि गुरुमहाराज कुटी-के बाहर एक चटाईपर बैठे हैं। बगलमें एक कनस्तर रक्खा है जिसमेंसे एक पोथी निकाल कर वे पढ़ रहे हैं। सामने लोहेका पिंजड़ा है जिसमें एक तोता है जो कहता है—'जगण मगण, आगतपतिका, लाटानुप्रास, छेकापन्हुति, जगण मगण, टेंटें······'

कवि 'चच्चा' गुरुमहाराजके पैर छू कर बैठ रहे। थोड़ी देर दोनो एक दूसरेकी ओर ग़ौरसे देखते रहे, फिर गुरुमहा-राजने कहा—

> रे बालक नादान कहाँ सोयेसे जागा।
> किस माताकी गोद किये सूनी उठि भागा॥

कवि 'चच्चा' ने विनयपूर्वक निवेदन किया कि मैं बालक नहीं हूँ, मेरी उम्र १८ वर्षकी है और मेरी शादी हो चुकी है। इसपर गुरुमहाराजने प्रश्नको तुरन्त दूसरा रूप देकर पूछा—

> कहिये कृपानिधान कहाँसे कैसे आये।
> किस विरहिनकी सेज किये सूनी उठि धाये॥

कवि 'चच्चा' ने इस बार अधिक स्पष्ट शब्दोंमें गुरुदेवको

समझाया कि मैंने न किसी माता की गोद सूनी की है और न किसी विरहिनकी सेज, मैं शहरमें ही रहता हूँ और काव्य-शास्त्रमें दीक्षित होनेके लिये आपके पास आया हूँ ।

गुरुमहाराजने मुँह बिचका कर कहा—

> कवि सब गये बिलाय भई बानी जिमि बन्ध्या ।
> कविता भई अनाथ बिसूरे प्रातः सन्ध्या ॥

कवि 'चच्चा' ने कहा हाँ, यह ठीक है, पर मैं कविताका उद्धार करूँगा, इसीलिये आपका चेला बनना चाहता हूँ; आशा है आप मेरी बिनती स्वीकार करेंगे ।

गुरुदेवने सर हिला कर नहीं किया और कहा—

> मन मिलेका मेला ।
> चित्त मिलेका चेला ॥
> वृथा नरकोंमें ठेलमठेला ।
> बाबा, सबसे भला अकेला ॥

सारांश यह कि कवि 'चच्चा' ने बड़ी प्रार्थना की पर गुरुदेव न पसीजे । उन्होंने नहीं छोड़कर हाँ न किया । उनका कहना था कि उन्होंने नये चेलोंकी भरती बन्द कर दी है । उनके पुराने चेले ही उनका नाम बदनाम करनेके लिये काफी हैं । अपने चेलोंकी करनी सोच कर वे लज्जासे गड़ जाते हैं । उनके एक शिष्यने इतनी उच्छृङ्खलता दिखायी कि सारी कविपरम्पराओंको

ठुकरा कर किसी कामिनीके नेत्रोंकी उपमा कटहलके कोएसे दे डाली। जब पुराना शिष्य नेत्रोंकी उपमा कटहलके कोएसे देता है तो नया शिष्य किसी सुन्दरीके कपोलकी उपमा पावरोटीसे दे तो क्या आश्चर्य्य है। यही सब सोच कर गुरुदेवने चेला बनाना ही बन्द कर दिया था।

कवि 'चच्चा' अनुनय-विनय करके हार गये। वे हताश हो कर घर लौटनेकी सोचने लगे। भावोंकी प्रतिक्रिया कुछ ऐसी हुई कि हृदयमें कविताके प्रति उच्चाटन-सा हो चला। पर परमात्माको हिन्दीकी भलाई मंजूर थी। उससे देखा नहीं गया कि महाकवि होनेकी शक्ति रखनेवाला एक व्यक्ति कवितासे यों मन मोटा करके चला जाय। एक साधारण घटना द्वारा उसने तुरत सारी स्थिति बदल दी।

मैं पहिले कह चुका हूँ कि गुरुमहाराजके आगे तोतेका पिंजड़ा रक्खा था। पिंजड़ेका पल्ला शायद ढीला था। तोतेने पल्ला खोल लिया और सर निकाल कर बाहर झाँकने लगा। संयोगसे कोनेमें एक बिल्ली दुबकी हुई थी। उसने झपटकर तोतेको पकड़ लिया और सबकी आंखोंके सामनेसे उसे ले भागी।

पर वाहरे गुरुमहाराज! आदमी हो तो ऐसा हो! टेक इसका नाम है! उन्होंने इस अवसरपर भी गद्यकी भाषाका प्रयोग नहीं किया। दूसरा होता तो गँवारोंकी तरह दौड़ो-दौड़ो

पकड़ो-मारो चिल्लाने लगता, पर गुरुमहाराजने अपने पनरुआ नामक नौकरको पुकार कर कहा —

अरे पनरुआ दौड़ बिलरिया लै गयी सुग्गा।
तू मन मारे खड़ा निहारै जैसे भुग्गा॥
अरे पनरुआ देख पड़ा है खाली पिंजड़ा।
तू मन मारे खड़ा निहारै जैसे हिंजड़ा॥

खेदके साथ कहना पड़ता है कि इन सुन्दर पंक्तियोंका पनरुआ पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपनी जगहसे हिला भी नहीं। उन्होंने फिर कहा —

अरे पनरुआ दौड़ बिलरिया बैठी छप्पर।
तू मन मारे खड़ा बना है जैसे पत्थर॥
अरे पनरुआ दौड़ बिलरिया नीचे उतरी।
तू मन मारे खड़ा बना है ज्यों कठपुतरी॥

पनरुआ अब भी भौंचक्का-सा खड़ा रहा। उसके दिल और दिमाग़मेंसे एक, अवश्य किसी पथरीले पदार्थका बना था।

कवि 'चच्चा' से न देखा गया। वे बिल्लीके पीछे दौड़ पड़े। बिल्ली तोतेको चट करनेके लिये किसी एकान्त और निरापद स्थानकी खोजमें थी। हमारे कविने पहुँच कर उसका खेल बिगाड़ दिया। उस रेतीले सपाटपर वह कवि 'चच्चा' से तेज़ न दौड़ सकी और तोतेको छोड़ कर भाग गयी।

तोतेको एक जगह दाँत धँसे थे पर विशेष चोट न आयी

थी। कवि 'चच्चा' ने उसे लाकर पिंजड़ेमें रख दिया। गुरुमहाराज पिंजड़ा पुनः आबाद देखकर प्रफुल्लित हुए। उन्होंने अपना निश्चय बदल दिया और 'चच्चा' को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। कवि 'चच्चा' के हर्षका कुछ ठिकाना न रहा। उसी दिन गुरुमहाराजने उन्हें पहला पाठ पढ़ाया और कहा कि रास्तेमें याद करते जाना। पहला पाठ था—

बिनय सील उर धारि छाँड़ि बिद्याको गर्रा।
गुरु चरननमें बैठि पिए पिंगलको ठर्रा॥
लिखि फारै फिर लिखै लाख खर्रे पै खर्रा।
तब कविताकौ रामकृपा कछु पावै ढर्रा॥

५

सेवाका मेवा

लाला घासीरामजीकी आज ऐसी दशा क्यों है? उनका सर जो गुब्बारेकी तरह उठा रहता था आज पंसेरीकी तरह लटक रहा है; उनका मुँह जो खोहकी तरह खुला रहता था आज थूथनकी तरह सिकुड़ गया है।

सहसा उन्होंने एक लम्बी साँस ली और कहा—'हाय! मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ!!'

ये शब्द धीरेसे कहे गये थे पर प्रभावमें किसी आर्तनादसे कम न थे। समवेदनासे सारी मण्डली स्तब्ध हो गयी। बिलवासीजीने बड़ी चिन्ताके साथ पूछा—'घासीरामजी! क्या बात है? आप क्यों इतने दुखी हैं? सम्भव है हम लोग आपके दुःखको बाँट सकें।'

'क्या कहूँ, बिलवासीजी! ऐसे संकटमें मैं कभी नहीं पड़ा था। कुछ समझमें नहीं आता कि मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ!!'

'धैर्य्य धरिये। परमात्मा बड़ी-से-बड़ी मुश्किलोंको आसान करता है। उसकी कृपासे सब ठीक हो जायगा। बात क्या है, ज़रा कहिये तो?'

'बात यह है कि आज मेरी स्त्रीने मुझसे कहा है कि अगर आप शीघ्र रायबहादुर न हो जायँगे तो मैं आपको देखकर मुँह फेर लिया करूँगी।'

यह सुनकर हम लोगोंके दिलसे एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। मैंने तो समझा था कि इन्द्रका कोई पेटेण्ट वज्र लाला घासीरामके ऊपर गिर पड़ा है। बिलवासीजीने पूछा—'सिर्फ इतनी बात है? आरम्भसे कहिये कि यह स्थिति कैसे उत्पन्न हुई?'

'मेरे पड़ोसी ठाकुर गुलबदनसिंहकी पत्नीने मेरी पत्नीको ताना मारा कि मेरा मर्द रायबहादुर है, तुम्हारा तो रायसाहब भी नहीं है। यह बात मेरी पत्नीको लग-सी गयी है। वह मुझसे कहती है कि आपको रायबहादुर होना ही पड़ेगा।'

'तो क्या बुरा कहती है? आप शहरके एक रईस हैं; राय-बहादुरीके अभावसे आपकी रईसीमें बट्टा लग रहा है। आपको रायबहादुरीके लिये कोशिश करनी ही चाहिये।'

'लेकिन क्या कोशिश करूँ?'

मुं० छेदीलालने कहा—'गणितका फ़ार्मूला है कि दासवृत्तिके मूलधनमें चापलूसी जोड़ कर विवेक घटा दीजिये, फिर देश-द्रोहसे गुणा करके आत्म-सम्मान रूपी शून्यसे भाग दे दीजिये। उत्तर……'

"लाला घासीरामजी!"—बिलवासीजीने कहा—"आप

मुं० छेदीलालकी बातोंपर कान मत दीजियेगा। वे योंही बका करते हैं। रायबहादुरी अच्छी चीज है। मैं अपने नामके साथ इसका जोड़ बैठाता हूँ तो मुझे अतिशय आनन्द आता है। राय-बहादुर पं० बिलवासी मिश्र बड़ा ही श्रुतिमधुर जान पड़ता है! जिस प्रकार पालिशसे पुराना जूता चमक उठता है उसी प्रकार रायबहादुरीसे मेरा नाम चमक उठता है।

लेकिन रायबहादुरी पाना कायरोंका काम नहीं है। इसके लिये जिस दर्जेकी बहादुरी अपेक्षित है वह सब लोगोंमें नहीं पायी जाती। महाकवि 'चच्चा' कहते हैं—

हाकिम हजूरमें सलामी अग्नि धार झेलि
डैम-फूल गोलिनको फूलसे गने रहैं।
छातीसे छुवकि जायँ छरें धिक-छी-छी के
व्यंगके वचन-वाण बेहद सहने रहैं॥
कवच बेहाई सों मन-वस्त्र-वल्ल ढांकि
होड़में सिंगाररसके सहज सजे रहैं।
पुरखा हमारे रहे रनमें बहादुर हम
रायबहादुर भला क्यों न बने रहैं॥

मैं लाला घासीरामजीकी पत्नीकी प्रशंसा करूँगा। वह उनके जीवनमें एक रोचकता पैदा करना चाहती हैं। ईश्वर करे घासी-रामजीको अपनी जिन्दगीमें कई बार रायबहादुरी मिले।

एक आदमीको उसकी जिन्दगीमें एक ही बार रायबहादुरी

देना भारत सरकारके पालिसीकी भारी भूल है। एक आदमी दो जगहोंसे बी. ए. पास कर सकता है, फिर वही आदमी दो जगहोंसे रायबहादुरी क्यों न प्राप्त करे। मेरे मित्र पं० खूब-चन्द कलकत्ता और प्रयाग, दो यूनिवर्सिटियोंके बी. ए. हैं। वे अपना नाम लिखते हैं खूबचन्द B. A. (Cal. Alld.)—मुझे अगर तीनबार रायबहादुरी मिलती तो मैं अपना नाम लिखता—बिलवासी मिश्र रायबहादुर (१९१३—१९२५—१९३२)

हमारे नगरके प्रसिद्ध रईस बा० मलूकदास रायबहादुरीके इश्कमें मर रहे थे। रायबहादुरीके बिना उनका संसार सूना हो रहा था। उन्होंने कई बार कोशिश की पर पौ न पड़ी। तब उन्होंने एक अच्छी युक्ति सोच निकाली। उन्होंने कलक्टर साहबको अपने यहाँ भोजनके लिये निमंत्रित किया और नौकर को सिखा दिया कि किसी बहाने थोड़ा पानी कलेक्टर साहबके जूते पर गिरा देना। नौकरने ऐसा ही किया। मलूकदासने झट अपना रूमाल निकाल कर साहबका जूता पोंछ दिया। साहब प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'वेल मलूक ! मैं खुश हूँ, वर माँगो।'

मलूकदासने उत्तर दिया—'हुजूर ! मैं अपनी जबानसे क्या कहूँ।'

'बोलो, क्या चाहते हो ? तुम्हारे लड़केको डिपटी कलक्टरी दिला दूँ ?'

'लेकिन पृथ्वीनाथ ! मेरा लड़का नालायक़ है ।'

'तब भी डिप्टी कलक्टर तो हो ही सकता है ।'

मलूकदासजीको इसमें सन्देह था । उन्होंने कहा—'नहीं मेरे माँ-बाप ! जो कुछ देना हो, मुझको ही दीजिये ।'

'लेकिन तुम भी तो नालायक़ हो ।'

'हाँ सर्कार ! पर रायबहादुर तो हो ही सकता हूँ ।'

साहब इस उत्तरपर इतना हँसे कि रोजका दूना खा गये । परम वैष्णव बा० मलूकदासजीने बिना कानपर कंठी चढ़ाये स्वयं अपने हाथोंसे कबाब और कटलेट परसा । इस बार गोटी बैठ गयी और वे उसी साल राय बहादुर हो गये ।

सज्जनो ! अँगरेज अवतारी जीव हैं । हम पशु थे, उन्होंने हमें मनुष्य बनाया । हमें बड़ोंके पैर छूनेकी गंदी आदत थी, उन्होंने हमें गुड-मार्निङ्ग करना सिखाया । हमें उपकारोंके लिये आजीवन कृतज्ञ रहनेकी बुरी आदत थी, उन्होंने हमें 'थैंक यू' कहना सिखाया । हम बैलोंकी तरह भर पेट खाते थे, पंचायतोंसे कौंकटमें न्याय पाते थे । उन्होंने हमें गरीबीमें संतोष करना सिखाया, न्यायका मूल्य बताया । उनके प्रतापसे बाघ और बकरी एक घाटपर पानी पीते हैं, हिन्दू और मुसलमान एक कलवरिया-में शराब पीते हैं ।

सज्जनो ! अंगरेजोंका सम्यक् गुणगान नारद शारदके बूते-

के बाहर है—हमारी आपकी क्या बिसात ! मेरा तो यहाँ तक विश्वास है कि द्वापरसे ही यदि इनका रामराज्य यहां स्थापित हो गया होता तो देशकी आज यह दशा न होती । यह सब मानते हैं कि भारतकी दुर्दशाका सूत्रपात महाभारतसे हुआ है । मैं पूछता हूँ कि यदि इनका राज्य उस समय यहाँ होता तो कौरव-पाण्डव अपना-अपना मुक़दमा हाइकोर्ट ले गये होते कि युद्ध द्वारा निपटारे की ठानते ? इतना समय बीत जानेपर यह कहना कठिन है कि भगवान् कृष्णको रायबहादुरी मिलती या नहीं पर इसमें सन्देह नहीं कि अर्जुनका सारथी वाइसरायका शोफ़र अवश्य हो सकता था ।

रायबहादुरी नामक स्वर्गपदकी प्राप्ति बिना कड़ी तपस्याके नहीं होती । सच पूछिये तो रायबहादुरी उस सेवाका मेवा है जिसमें प्राणोंकी बाजीका भी कोई मूल्य नहीं है और जो आत्मा-की बलि पाये बिना पूरी भी नहीं होती ।

जान पड़ता है कि नीचेकी पंक्तियोंमें महाकवि 'चच्चा' ने रायबहादुरी की इच्छा रखने वाले किसी सज्जनका हृदय खोल-कर रख दिया है । वे कहते हैं—

हवस हिये हुलसत लगत लहलहात लखि आस ।
कबहुँ गरीब नेवाजिहैं वे साहब हम दास ॥
वे साहब हम दास, खास हम वे कल्पद्रुम ।
कहिहैं कछु मुसकाय कहो कैसे आये तुम ॥

तब नैनन भरि नीर पुलकि नव नेह निबाहब।
पद पदवी सब लहब गहब जब वे पद साहब॥

६

सिलका सिलसिला

उनकी अधखुली आँखें झपकियाँ ले रही थीं। चेहरेका चमड़ा चढ़ी हुई खँजड़ीकी तरह खिंचा हुआ था। विचित्र दशा उनकी हो रही थी।

यकायक उनकी आवाज कमरेमें गूँज उठी। वे बोले—"सज्जनो! आपलोग जानते हैं कि रास्ता चलनेसे कटता है, ऋण देनेसे पटता है, रोग दवासे घटता है, दूध खटाईसे फटता है और लिफाफा गोंदसे सटता है?"

दो मिनट चुप रहकर पंडितजी फिर बोले—"ये जो वाक्य मैंने अभी कहे हैं उनसे मेरे मूल वक्तव्यसे कोई सरोकार नहीं, उन्हें केवल सजावटके लिये मैंने आरम्भमें रख दिये हैं। अब मैं अपने मुख्य विषयपर आता हूँ। आप लोग चित्त एकाग्र करके सम्भव हो तो हृदयकी गति रोक करके, ध्यानपूर्वक सुनिये। लाला घासीरामसे कहिये कि अपने कान खड़े कर लें, पर स्वयं बैठ जायँ।"

हम लोगोंका हृदय आशासे लहरा उठा। पंडितजी आज

जोरोंपर हैं। किस विषयपर क्या कहेंगे—यह जाननेके लिये सारी मण्डली उद्ग्रीव हो रही थी।

पंडितजी बोले—"सज्जनो! आज जरा गहरी छन गयी है। कुछ मित्र मकानपर आ जमे थे। उनकी राय हुई कि भंग छने। मैंने स्वतंत्र रूपसे भी यही राय क़ायमकी थी कि भंग जरूर छने। और भंग तैयार हुई। जिस समय गलेसे उतरकर हृदयको शीतल करती हुई पाकस्थलीमें पहुँची मुझे उस समय ऐसा ज्ञान पड़ा कि सारा विश्व एक विशाल इन्द्र-धनुष है जो मेरे ही रङ्गसे रङ्गीन होकर रङ्ग ला रहा है। अब इस समयकी दशा क्या कहूँ! भंगने चंगपर चढ़ा लिया है और मुझमें और परमात्मामें अब कुछही बित्तोंका फ़र्क रह गया है। कवि 'चञ्चा' के शब्दोंमें—

मानस सरोवरमें उठत तरंग आजु
अंग-अंग कैसी हुरदंगकी लहर है।
ध्यानकी घटासे जो बरसत विचार-धारा
हियेमें बहाये देत ज्ञानकी नहर है॥

सज्जनो! यह मैं आपसे कह चुका हूँ कि कवि चञ्चा विजयाके परम भक्त थे और विजयाको भगवानकी विभूति समझते थे। उनकी रचनाओंमें उनकी भंग विषयक आसक्तिकी झलक जगह-जगहपर मिलती है। उनकी रायमें भंगके लिये सभी स्थान और सभी अवसर उपयुक्त थे—

छत पै, तखत पै, कि जगत पैं द्वारके
आँगनमें, बागनमें, सांकरी डगरमें।

भाँग-बूटीमें बाधा डालनेवालोंके लिये वे किसी भी दण्डको अधिक नहीं समझते थे—

भंगके प्रसंगमें चमारिये जे भंग डारैं
बांधि शिलाखंड तिन्हैं सागरमें डारिये।

पतिकी सेवा करनेवाली सती स्त्रीकी प्रशंसा एक बार उन्होंने इन शब्दोंमें की थी—

विजन डुलावति है पगन पलोटति है
घोंटति है भंग परे हाथनमें लोढ़ा हैं।

कहा जाता है कि कवि चच्चा ने 'भङ्ग-भारती' नामका एक बड़ा काव्य-ग्रंथ बनाया था। इस ग्रंथको एक पंसारीके यहाँ बारह आने पर बन्धक रखकर उन्होंने उससे भङ्गके लिये कुछ ठण्डाई और चीनी खरीदी। बारह दिनका वादा था, पर बारह महीने प्रतीक्षा देखकर, जब उसके बारह आने पैसे नहीं ही वापस मिले, तब पंसारीने ग्रंथके पन्ने फाड़कर पुड़िया बांध डालीं। पुस्तक नष्ट हो गयी, पद्य-साहित्यके न जाने कितने अन-मोल रत्न सदाके लिये विस्मृतिके धूलमें मिल गये। ग्रंथका अन्तिम छंद एक सज्जनको याद था। वह इस प्रकार है—

कोटि जनमके घोर तपसे प्रसन्न भये
बाबा बमभोला तब बोले बेटा मांगु वर ।
हौ जो भले रीझे नाथ, बोल्यौं हौं नवाइ माथ,
दीजै सुभ बास निज गिरि के सिखरपर ॥
खास खवासन में सेवा सौभाग्य होय
सिलके सुचि सिलसिलेमें काम पावै अनुचर।
विजया बनाइके पिलावै औ प्रसाद पावै
ऐसो बड़भागी पेखि इन्द्र कांपै थरथर ॥

एक स्कूलके उत्साही संचालकोंने अपने यहां एक सुलभ-व्याख्यान-मालाकी आयोजना की थी। नगरका कोई प्रतिष्ठित और विद्वान् व्यक्ति प्रति रविवारको आकर छात्रोंको कुछ उपदेश देता था। एक रविवारको कवि च्चच्चा बुलाये गये थे। उन्हों-ने व्याख्यान तो अच्छा दिया; लड़कोंको पढ़ने-लिखने और डंड पेलनेकी शिक्षा दी पर अन्तमें वे उन्हें विजया सेवन करने की सलाह देने लगे। उन्होंने कहा—'प्यारे बालको! यदि पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाय, माथा खाली और शरीर शिथिल जान पड़ने लगे तो घबराना मत। मेरी सलाह मानना। मिर्च, बादाम, सौंफ और इलायचीके साथ थोड़ी भङ्ग पीस डालना। फिर शकर मिलाकर लोटेमें छान लेना और पी लेना। बच जाय तो सह-पाठियों और अध्यापकोंको बाँट देना। फल तत्काल दीख पड़ेगा। गणितका जो प्रश्न पहिले प्राण देने पर भी नहीं पिघलता था

वह चुटकी बजाते हल हो जायगा। बल दुगुना, उत्साह चौगुना, और बुद्धि अठगुनी हो जायगी। बालको! भङ्ग चीज ही ऐसी है। सृष्टिकर्त्ताकी सारी मायाकी गुटका है। सफलताकी कुंजी है। हास्यविनोद की आत्मा है। हरी मनभरी इसका नाम है।

भङ्गकी मादकताका नाम स्वर्ग है। भगवान नटवरने इसी भङ्ग ऐसे भेषजके भरोसे कालकूटको कण्ठस्थ किया था। भङ्गके गोलेका सदा बोलबाला रहे। तुम्हें पढ़ाया गया है कि पृथ्वी गोल है, पर यह तुम न जानते होगे कि पृथ्वीने अपनी गोलाई भङ्गके गोलेसे सीखी। जानते हो हथेलीमें गड्ढा किस लिये है? भङ्गके गोलेके लिये। जिस प्रकार·········।'

कवि 'चच्चा' अभी बहुत कुछ कहते पर स्कूलके हेडमास्टरने उन्हें बोलनेसे रोक दिया। उसने कहा कि मैं नहीं चाहता कि मेरे छात्र आपका व्याख्यान सुनें, मैंने आपको बुलाकर बड़ी ग़लती की, आप कृपया चले जाइये। कवि चच्चा को हेड-मास्टरकी यह गुफ्तगू निहायत नापसन्द आयी और वे वहीं एक आराम-कुर्सीपर यह कहते हुए लेट गये कि मैं बिना अपना व्याख्यान समाप्त किये यहांसे नहीं टलूँगा।

अन्तमें हेडमास्टरका इशारा पाकर चार अध्यापकोंने आराम-कुर्सीको कवि चच्चाके सहित उठा लिया और कम्पौण्डके बाहर

ले चलें। लड़कोंने सोचा कि चलो अच्छा तमाशा देखनेको मिला; वे भी संग हो लिये।

दृश्य यह था कि आगे-आगे चार अध्यापक, उनके कंधोंपर एक आरामकुर्सी, आरामकुर्सीपर कविवर चच्चा—आरामसे लेटे हुए; और पीछे-पीछे २–३ सौ स्कूली लड़के, जो ताली पीटते हुए 'राम नाम सत्य है' पुकार रहे थे।

७

निजी और गोपनीय

पारिवारिक जीवनकी अत्यन्त साधारण घटनाओंको भी हम अकसर इतना महत्त्व दे बैठते हैं कि वे हमें एक विशेष रूपसे प्रभावित करनेकी शक्ति प्राप्त कर लेती हैं—या यों कहिये कि हमारे सुख-दुखकी मात्राको घटाना या बढ़ाना उनके वशकी बात हो जाती है।

उदाहरणके लिये लाला घासीरामको लीजिये। आज तीसरे पहर उनकी पत्नीने उन्हें पाव-भर पेठा खिलाया और जब तक वह खाते रहे, वह उनके पीछे खड़ी उनकी पीठ सहलाती रहीं।

आप स्वीकार करेंगे कि यह एक बड़ी साधारण-सी घटना थी। अधिकसे अधिक इसे वैवाहिक आनन्दका एक रूप मान लेना काफी था। लेकिन हुआ यह कि इस घटनासे घासीराम-जीका दिमाग़ फिर गया। वह अपनेको दूसरा 'सत्यवान' समझ कर प्रसन्नताके पारावारमें बह चले।

दूसरा उदाहरण लाला मल्लूमलका है। एक साधारण-सी घटनाको महत्व देकर उन्होंने व्यर्थ अपनेको गमके गढ़ेमें

गिराया। बात यह हुई कि आज दुपहरीमें उनकी स्त्रीके स्लीपर खो गये। उसने सारा घर छान डाला। जब कहीं न मिले, तब उसने लाला मल्लूमलके तकियोंके नीचे भी तलाश किया। बस, इस जरा-सी बातसे लाला मल्लूमलजी इतने दुखी हुए कि जिसका बयान नहीं।

अगर यह मान लिया जाय कि पतिके तकियोंके नीचे स्लीपर तलाश करनेका कृत्य स्त्रियोंके लिये न समाजसे अनुमोदित है और न शास्त्र-सम्मत ही—जहाँ तक मालूम है, विधि-विहित भी नहीं है—तो भी बात यहाँ आकर रुक जाती है कि अगर तलाश कर ही लिया, तो क्या हो गया ? कोई भी उदार-हृदय पति इस बातको भूल जाता या तरह देता; पर लाला मल्लूमल ऐसा न कर सके। इस बातसे उनके दिलको गहरी ठेस लगी। वह अत्यन्त दुःखी हुए।

सन्ध्या समय दोनों सज्जन क्लबमें आये। हर्ष और विषादका इतना सुकर तुलनात्मक दृश्य कम देखनेमें आया था। लाला घासीरामजी आनन्द-विभोर हो रहे थे; उनके होठोंपर हँसी झलक रही थी। इसके विपरीत लाला मल्लूमलजी मन-मारे तन-हारे भींगे लत्ते-से ढीले और निर्जीव हो रहे थे।

एकके हर्ष और दूसरेके विषादका कारण धीरे-धीरे प्रकट हो गया। मित्रोंकी मंडलीमें ऐसी बातें नहीं छिप सकतीं।

बिलवासीजीको मनोवैज्ञानिक गुत्थियोंके सुलझानेमें स्वाभाविक आनन्द मिलता है। वह अपने मित्रोंको ही इस प्रकारके अध्ययनकी सामग्री समझते हैं। उन्होंने लाला घासीरामजीसे पूछा—'जिस समय आपके पेटमें पेठा उतर रहा था और पीठपर हाथ फेरा जा रहा था, उस समय आपके हृदयमें क्या विचार उठ रहे थे ?'

'मैं सोच रहा था कि इस समय देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि क्यों नहीं करते !'

'और आपने अपनी स्त्रीसे क्या कहा जो आपकी पीठपर हाथ फेर रही थी ?'

'मैंने उसे आशीर्वाद दिया।'

'क्या ?'

'सदा सौभाग्यवती हो !'

बिलवासीजी अब लाला मल्लूमलकी ओर मुड़े। उनसे पूछा—'जिस समय आपके तकियोंके नीचे स्लीपर ढूँढा जा रहा था, उस समय आपने किया क्या ?'

'मैं छतपर चढ़ गया।'

'माथा ठंडा करनेके लिये ?'

'नहीं, कूदकर प्राण देनेके लिये।'

'लेकिन प्राण ऐसा बेहया कि छतसे कूदने पर भी नहीं निकला ?'

'नहीं, मैं कूदा ही नहीं।'

'क्यों?'

'छत बहुत ऊँची थी!'

बिलवासीजीने अब हमलोगोंकी ओर देखकर कहा—'सज्जनो! मैंने सारा भारतवर्ष देखा है—कटनी से भटनी तक, दमोह से गमोह तक, जैसोर से मैसोर तक, राँची से कराँची तक, एटा से क्वेटा तक—पर मैंने लाला घासीराम-सा स्वार्थी और लाला मल्लूमल-सा मूर्ख न देखा है और न देखने की आशा है।'

हमलोग चुप रहे। लाला मल्लूमलके मूर्ख होनेकी बात तो समझमें आ गयी, पर बिलवासीजीने घासीरामको स्वार्थी किस न्यायसे क़रार दिया—यह कोई न समझ सका।

घासीरामजीने दबी जबानसे पूछा—'पंडितजी! आपने मुझे स्वार्थी क्यों कहा?'

'आपकी बात ही आपको स्वार्थी प्रमाणित करती है। आपकी स्त्री आपको पेठा खिलाती है और पीठपर हाथ फेरती है। आप प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद देते हैं कि 'सदा सौभाग्यवती हो।' यानी आशीर्वादमें भी अपना ही स्वार्थ सिद्ध करते हैं। स्वयं अमर होनेके व्याजसे स्त्रीको सदा सौभाग्यवती रहनेका आशीर्वाद देना स्वार्थकी सीमा नहीं तो क्या है?'

लाला घासीरामजी अवाक् रह गये। मित्र-मंडली हँस पड़ी।

लाला मल्लूमलके दिलसे विषादकी काई फट चली थी। वह भी मुसकरा उठे।

लाला भाऊलालने कहा—'मेरे पड़ोसमें एक वकील साहब रहते हैं। वह कचहरी जाते समय अपनी स्त्रीको तालेमें बन्द कर जाते हैं।'

मुं० छेदीलालने कहा—'इसके विपरीत मैं एक प्रोफ़ेसर महोदयको जानता हूँ जिन्होंने अपनी नव-विवाहिता वधू को एक मित्रके साथ हवा खानेके लिये मसूरी भेज दिया है।'

'और सुनिये। मेरे भतीजेने अपने कमरेमें एक नया कैलेण्डर लटकाया। उसपर किसी स्त्रीका चित्र बना था। उसकी पत्नीने देखा तो रूठकर पीहर चली गयी।'

'अभी कलकी बात है कि मेरी धोबिन मेरे पास रोती हुई आयी और कहने लगी कि मेरा पति अब मुझे बिलकुल नहीं प्यार करता। मैंने पूछा कि तूने कैसे जाना कि वह तुझे अब नहीं प्यार करता? उसने उत्तर दिया कि इधर चार महीने हो गये उसने मुझे एक बार भी नहीं पीटा, पहिले हफ्तेमें दो बार पीटता था।'

'मेरे मुहल्लेमें एक डाकिया है जिसकी स्त्री············'

"सज्जनो!" पं० बिलवासी मिश्रने कहा "ये दृष्टान्त अत्यंत मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। इनसे प्रकट होता है कि अपने

दाम्पत्य जीवनके लिये यदि हम एक आदर्श निर्धारित कर सकें तो हमारा अनन्त कल्याण हो। महाकवि 'चच्चा' ने यही किया था। उन्होंने अपनी स्त्रीको अपने रंगमें रँग लिया था। यही कारण था कि वे निर्धन होते हुए भी दुःखी नहीं थे।

एक बार उनकी स्त्रीने उनसे कुछ गहने माँगे। उनका यह हाल था कि भोजनको पूरा पड़ता ही नहीं, गहने कहाँसे लाते। दूसरा मनुष्य होता तो स्त्रीको चार घुड़की सुनाता; कोई वीर पुरुष होता तो चार डंडे रसीद करता। दूसरा कवि भी होता तो कहता कि 'पेट पटे पै पटभूषन जुहाइये।' पर कवि चच्चा ने दूसरी ही नीतिसे काम लिया। उन्होंने अपनी स्त्रीको ऐसा जवाब दिया कि फिर उसे गहनोंकी इच्छा ही न रह गयी। उन्होंने कहा—

> वर बिचार, वर आचरन, उर अनन्त अनुराग।
> भोरी बोरी-प्रेम-रँग, भोरी भरी सुहाग॥
> भोरी भरी सुहाग मधुरबैनी गुन-आकर।
> पति कविकुल-सिरमौर 'चच्चा' निस-दिन को चाकर॥
> बिनय-सील-संकोच-कलित कमनीय कलेवर।
> निधि ऐसी सब पाय कहा करिहौ लै जेवर?॥

कहिये, कैसी रही? इस उत्तरके बाद फिर कौन ऐसी स्त्री होगी, जो जेवरकी इच्छा प्रकट करेगी? इसी बातपर, यदि बुद्धिसे काम न लिया गया होता तो, कितना बड़ा झगड़ा खड़ा

हो जाता ! प्रेमकी पारस्परिकता बनाये रखनेके लिये कलहका अभाव नितान्त आवश्यक है। इस सत्यको कवि 'चच्चा' अपने दाम्पत्य जीवनके आरम्भमें ही पहचान चुके थे। पति-पत्नीमें आपसके अनबनका परिणाम कितना अवाञ्छनीय होता है, उसीका दिग्दर्शन उन्होंने अपनी इन पंक्तियोंमें कराया है—

जोजन दूरि भयो रुचि भोजन,
सेजनको बिसर्यो बिसरामा।
कानन होरि लगे घर-आंगन,
बागनमें दुख-कंटक जामा॥
कौन कथै न भखै न अनन्द,
जँचै न 'चच्चा' कविता गुन-ग्रामा।
बाम सबै बिधि सों बिमना,
जब लौं कछु बाम भई निज बामा॥

सज्जनो ! कवि 'चच्चा' ने इस सम्बन्धमें बहुत-कुछ कहा है और बड़े रोचक ढङ्गसे कहा है। इस विषयकी उनकी सूक्तियाँ बड़ी लोकप्रिय हो रही हैं। हाँ, एक बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। उनका ऐसा विश्वास था कि पुरुषोंकी आत्म-परायणता ही दाम्पत्य-जीवनको दुःखमय बना डालती है। इसी बातको वह अपनी शैलीमें यों कहते हैं—

आतप सीत सनेह सनी
सब गेह सम्हारत देह नसावै।

भोजन-भार सु थार सजाय
जिमाय हमैं कछु जूठन पावै ॥
प्रेमको नेम कहा कहिये
अति रात गये नित गात दबावै ।
ऐसो सनै नहिं एक कहै
कि अबै चच्चा चाचाकी चलावै ॥

स्त्रियोंके सम्बन्धमें कवि 'चच्चा' के विचार अत्यन्त उन्नतिशील थे पर आजकलकी तरह वे पाश्चात्य सभ्यताके पीछे पागल नहीं हुए थे। वे स्त्रियोंका आदर चाहते थे, पर इतना नहीं कि उनके तलवे चाटे जायँ। वे स्त्रियोंको स्वतंत्र देखना चाहते थे, पर इतना नहीं कि स्वयं उनके गुलाम बन जायँ। वे स्त्रियोंको प्रसन्न रखना चाहते थे, पर औचित्य और विवेकका खून करके नहीं। आदर्शवादी वृद्धोंकी तरह वे उन्हें सरपर बिठा लेनेके पक्षपाती नहीं थे।

इसका कारण था। वे स्त्रियोंकी सत्तासे अपरिचित नहीं थे; उनकी शक्तिसे वे अनभिज्ञ नहीं थे। इसीसे वे उनसे सदा सचेत रहनेकी आवश्यकता समझते थे। हममेंसे बहुतेरे उनसे सहमत न हो सकेंगे पर तब भी उनके विचार सुनने, समझने और मनन करने योग्य हैं। वे कहते हैं—

या जग नर देखे सुधी, साधक सिद्ध सुजान।
सूर वीर ज्ञानी गुनी, बुद्धिमान बलवान ॥

बुद्धिमान बलवान अपर नरवर देखे अस।
करतल-गत जेहिं मुक्ति सकल इन्द्री कीन्हें बस॥
किन्तु जगत सब छानि थके 'चच्चा' की किरिया।
नर अस देखे नाहिं चरायो जिन्हैं न तिरिया॥

८

चवन्नीका चमत्कार

वे लपके हुए चौककी ओर चले जा रहे थे। उन्हें पँचमेल-प्रकाशन समितिके मालिक लाला अमीरचन्दसे इसी समय मिलना था।

चौराहेतक पहुँचे थे कि सामनेसे श्री टुनमुनदास विशारद आते दिखायी पड़े। नमस्कार-प्रणामका सिलसिला शुरू भी न हो पाया था कि टुनमुनदासने कहा—'पंडित जी! आपके पास एक चवन्नी है? हो तो दीजिये। मैं मकानसे आते समय लेना भूल गया।'

बिलवासीजी संकोचमें पड़ गये। नहीं न करते बना। संयोगसे उनके जेबमें एक खोटी चवन्नी थी भी। उन्होंने उसे निकाल कर टुनमुनदासके हाथपर रख दिया।

पर टुनमुनदास महा धूर्त है। ताड़ गया कि चवन्नी खोटी है। झट बोल उठा—'पंडितजी! आप कौन जात हैं?'

जरा प्रश्नपर गौर कीजिये कि पंडितजी, आप कौन जात हैं। इसी तरह मेरे छोटे बच्चेने एक बार मुझसे पूछा था कि बाबूजी! बारह बजे कै बजता है?

बिलवासीजी कोई मुँहतोड़ उत्तर सोच ही रहे थे कि वह फिर बोला—'जान पड़ता है कि जैसे यह चवन्नी खोटी है वैसे ही आप भी जातके खोटे हैं।'

यह कह कर वह चलता हुआ। चवन्नी भी लेता गया।

पं० बिलवासी मिश्र क्रोधसे तिलमिला उठे। टुनमुनदासके प्रति जो भाव उनके हृदयमें इस समय उत्पन्न हुए वे सरासर हिंसात्मक थे।

वे उलटे पाँव लौट पड़े। पँचमेल-प्रकाशन समितिके अध्यक्ष लाला अमीरचन्दजीसे इस समय मिलना ठीक न होता—कहीं टुनमुनदासका गुस्सा वे उनके ऊपर उतारना शुरू कर देते तो अनर्थ हो जाता।

क्लबका समय हो गया था, मित्र-मण्डली उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने आते ही सारी घटना कह सुनायी।

लाला झाऊलालने कहा—'क्या अन्धेर है कि एक तो बिलवासीजीने चवन्नी दी—अच्छी या खोटी—और ऊपरसे जातके खोटे बने।'

मुं० छेदीलाल दो बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी मध्यमा परीक्षामें फेल हो चुके थे। वे बोले—'अजी, दोष टुनमुनदास-का नहीं है; दोष उस 'विशारद' नामके मोरपङ्खका है जो साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षक समितिने उस कौएकी पूँछमें खोंस दिया है।'

चौधरी बतासरायजीकी लिखी दोनों पुस्तकें अभी अप्रकाशित पड़ी थीं। उन्होंने कहा—'बात यह है कि जबसे टुनमुनदासका 'प्रेमपँवाड़ा' नामक ग्रंथ प्रकाशित हो गया है तभीसे वह घमण्डमें भर कर बरसाती नाले-सा बह चला है।'

बिलवासीजी ऊपरसे शान्त थे पर हृदयमें उनके अब भी उद्वेगोंका अन्धड़ बह रहा था। टुनमुनदासकी बात उनके दिलमें रह-रह कर टीसकी तरह उठ रही थी। कलका छोकरा टुनमुनदास उन्हें जातका खोटा कह कर सहीसलामत निकल गया! साहित्याचार्य्य, साहित्यानन्दसन्दोह, साहित्य-वन-विहङ्ग पं० बिलवासी मिश्रका इतना बड़ा अपमान!

बिलवासीजी अब चुप न रह सके। जीभको दाँतों तले कबतक दबाये रहते! हृदयमें भावोंकी भीड़ लग चली थी; उन्हें निकलनेका रास्ता देना आवश्यक हो गया। विचारोंको प्रकट करनेके लिये अवसर-कुअवसर नहीं देखा जाता; यही बड़े लोगोंकी नीति है। लाटसाहब असहयोगियोंको गाली देना चाहते हैं तो किसी भोजभातके अवसरपर, या किसी संस्थाका उद्घाटन करते समय, दे डालते हैं। बिलवासीजीने भी यही किया। अपने बरसोंके साहित्यिक जीवनमें साहित्यसेवा और साहित्यसेवियोंके सम्बन्धमें जो कटु अनुभव उन्होंने प्राप्त किये थे उन्हें व्यक्त करनेका यह अच्छा मौका हाथ लगा। वे ले उड़े।

उन्होंने कहा—"सज्जनो ! मुझे इसका खेद नहीं है कि टुन-मुनदासने मुझे जातका खोटा कहा। खेदकी बात सच पूछिये तो यह है कि टुनमुनदास-सरीखे साहित्यिक गुण्डे हिन्दी-संसारमें अनेक हैं, और होते जा रहे हैं। नये लेखकोंकी जड़ खोदना और पुरानोंकी खिल्ली उड़ाना—यही इनका व्यवसाय है। द्वेष इनका धर्म है और गाली इनकी भाषा है। डींग इनकी साँस है और षड्यन्त्र इनका जीवन है। न इन्हें लोककी लाज है, न परलोकका भय है। साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण करते ही ये बिल्लीकी तरह आपका रास्ता काटते हैं। जिसके पीछे पड़ जाते हैं उसे ले डूबते हैं। इनसे वही बचता है जिसे वह स्वयं बचाये। महा-कवि 'चच्चा' के मित्र पं० पूरनदास उपनाम 'पूस' कविका नाम तो आप लोगोंने सुना ही होगा ?"

हममेंसे कोई भी इस कविके नामसे परिचित न था। लाला घासीरामने कहा—'कवि पूस तो बड़ा विचित्र-सा नाम है।'

बिलवासीजीने उत्तर दिया—'उनका पूरा नाम पूरन-दास था जिसके आदि और अन्तके वर्णोंके मेलसे 'पूस' शब्द बनता है।'

'तब भी पूस नाम बड़ा विचित्र है।'

'बिल्कुल नहीं। संस्कृतमें माघ कवि हैं, तो हिन्दीमें पूस कवि क्यों न हों ?'

इस तर्कने लाला घासीरामको निरुत्तर कर दिया। उन्हें चुप देख कर बिलबासीजीने फिर शुरू किया—"कवि पूसको कुछ साहित्यिक गुण्डोंने इतना सताया, इतना डह्काया कि घबराकर वे कवि 'चच्चा' के पास सलाह लेने आये। उस समय दोनों कवियोंमें यों बातचीत हुई—

कवि पूस—

चामकी जीभ लगाम न मानत
आखत हैं धिक भावत जो जी।

महाकवि चच्चा—

डंक सी बैन कहैं मति रंक
निसंक बनें परछिद्रके खोजी॥

कवि पूस—

कोन इलाज, निलाज भये सब
'पूस' थके नित झारत गोजी।

महाकवि चच्चा—

एक उपाय 'चच्चा' को रुचै
कि कुपाय रहै इनकी यहि रोजी॥

सज्जनो ! जरा सोचनेकी बात है कि हमारे यहाँ साहित्य-सेवियोंमें कितनी प्रतिहिंसा, कितनी अनुदारता, कितनी जुक्का-फजीहत और कितना कँगलदिरीपन है। साहित्य-सेवाको हमने

एक बीहड़ वन बना लिया है जहाँ लेखकोंके झुण्ड हिंस्र जन्तुओंकी तरह एक दूसरेकी लोथ गिरानेके लिये घात देखते रहते हैं।

मैं आजतक नहीं समझ सका कि लेखकोंमें एक दूसरेके प्रति इतनी चिढ़, इतनी कुढ़न क्यों है? वे एक दूसरेको देखकर घूरते-गुर्राते क्यों हैं? क्या साहित्यसेवाका क्षेत्र इतना सङ्कीर्ण है कि लेखकगण बिना एक दूसरेके पैरका अँगूठा कुचले आगे नहीं बढ़ सकते?

फिर लेखक तो लेखक, चाहे बड़ा हो या छोटा। बड़ा लेखक होगा, लिखता होगा और प्रकाशकोंको नखरे दिखाता होगा। छोटा लेखक होगा, लिखता होगा और प्रकाशकोंके नखरे देखता होगा। आप यदि लेखक हो, तो आपको क्या लेना-लादना है? 'चकल्लस' तो हर तरहसे प्रकाशकोंका है। आप क्यों आपसमें काँटा बोते हो?

कवि 'चचा' इन झगड़ोंसे दूर रहते थे, पर तब भी उनकी जान न बचने पायी। अनिच्छा होते हुए भी वे इस भँवरमें खिंच जाते थे। एक बारकी बात है कि वे अपनी झोली और सोंटा लिये हुए संध्या समय टहलने जा रहे थे। रास्तेमें खबर लगी कि अमुक स्थानमें आज इसी समय कवि सम्मेलन हो रहा है। वे स्वभावसे काव्य-लोलुप थे ही; कवि-सम्मेलनकी सूचना

पाकर अपना सब कामकाज भूल गये और सीधे बताये हुए स्थानपर जा पहुँचे। वहाँ मित्रोंने आग्रह किया कि आप भी कुछ सुनाइये। इन्होंने क्षमा चाही और कहा कि मैं केवल आप लोगोंकी कविताका आनन्द लेने चला आया हूँ।

बात वहीं खतम हो जाती पर दुर्भाग्यवश वहाँ कवि 'चचा' के कुछ विरोधी भी उपस्थित थे। उनकी बन आयी। उन्होंने सोचा कि इन्हें लज्जित करनेका अच्छा मौका मिला है। उन लोगोंने इन्हें आड़े हाथ लेना शुरू किया। काव्य-चर्चाके स्थानमें कवि 'चचा' की हजो शुरू हो गयी। उनके ऊपर तुकबन्दियोंकी बौछार होने लगी।

एकने कहा—

चचा गये बुढ़ाय रहे बुद्धूके बुद्धू।
बालक-से चुप साधि पियें ज्यों मांका दुद्धू॥

दूसरेने कहा—

कविजनके दर्बार चचाकी छीछालेदर।
रूपा-से जे रहे बिके वे रांगाके दर॥

आखिर कहाँ तक? सहनशीलताकी भी एक हद होती है। हाड़माँसका आदमी कहाँ तक बर्दाश्त करता जाय। कवि 'चचा' ने समझ लिया कि बिना कुछ सुने ये निकम्मे उनका पिण्ड न छोड़ेंगे। उन्होंने कहा—

कोकिलको कल गान सुनै जग
    कौन गुनै निगुनी गँवरैया।
कातरता पर-श्री की हिये
    उपजावत कोटिन नाम धरैया॥
देखि 'चचा' कवि सूर उदै
    मुरझात भये कवि कूर तरैया।
ख्यातिको सागर मेरो महान
    उलीचत ये उपहास परैया[1]॥

कवि 'चचा' को इससे अधिक कहनेकी आवश्यकता न पड़ी। उनका विरोधी दल ठण्डा पड़ गया।

हिन्दी संसारमें साहित्यसेवाका वायुमण्डल ईर्षा और द्वेषके विषैले गैसोंके कारण बड़ा दूषित हो गया है। यही कारण है कि हमारे साहित्यका उद्यान अभी बहुत कुछ वीरान पड़ा हुआ है। हमारे यहाँ जितने साहित्यसेवी हैं उतनी साहित्यसेवा नहीं है। साहित्यसेवियोंके समुदायमें साहित्यसेवाकी गुरुता, महत्ता और पवित्रताको समझनेवाले दालमें नमककी तरह भी नहीं हैं। सच्ची साहित्यसेवा उसीकी है जो रुपया-आना-पाईसे अलग रह कर, दम्भ और द्वेषके विषसे बचकर, विश्रुतिके लोभ और विस्मृतिके भयको सम भावसे त्याग कर अपने उद्योग ही को अपना पुरस्कार समझता है।

---

१ परई = मिट्टीका एक पात्र।

९

बाबा-बिरदावली

महीनोंकी प्रतीक्षाके बाद आज 'कल्लोल' का जीवन-चरिताङ्क निकल गया। अच्छा निकला; पृष्ठसंख्या ७७७, चित्र-संख्या २२२, लेखसंख्या १११, वजन १ सेर ११ छटाँक।

खूब तारीफ हुई। 'मदिरा' के सम्पादक पं० अघोरनाथने, 'मदारी' के सम्पादक पं० नागनाथने, 'मंदार' के सम्पादक पं० दूधनाथने तथा अन्य अनेक विद्वानोंने इस विशेषांककी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वास्तवमें 'कल्लोल' का जीवन-चरिताङ्क एक अच्छी चीज थी। इसमें हिन्दीके प्रायः सभी लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकोंकी स्वलिखित संक्षिप्त जीवनियाँ दी गयी थीं। हमारे पं० बिलवासी मिश्र यहाँ भी अपनी मौलिकतामें सबसे बीस रहे।

उनका जीवन-चरित्र सबसे छोटा पर सबसे अच्छा था। जिस जीवन-चरित्रके लिये दो फर्मा भी कम होता, वह दो पेजमें नहीं, दो कालममें नहीं, बल्कि दो लाइनमें—याने एक दोहेमें था। बिलवासीजीने लिखा था—

जीते गई न कामना, जीते क्रोध न काम ।
जीते जिमि जड़ जीव जग, बिलवासी बदनाम ॥

इस जीवन-चरित्रको लोगोंने बहुत पसंद किया । एक समालोचकने यहाँ तक लिखा है कि बिलवासीजीके बाद यही दोहा उनका ताजमहल होगा ।

आज क्लबमें इसी जीवन-चरित्रकी चर्चा थी । मित्रोंको प्रशंसाके पुल बाँधते देख बिलवासीजीने बात फेरनेकी इच्छासे कहा—"सज्जनो ! यह जानकर आप लोगोंको आश्चर्य होगा कि महाकवि चचाका जीवन-चरित्र इससे भी कम शब्दोंमें है । किसी सम्पादकके बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने लिखा था—जीवन नष्ट और चरित्र भ्रष्ट, यही मेरा जीवन-चरित्र है ।

मैं इसके लिये कवि चचाकी प्रशंसा नहीं कर सकता । उन्होंने जीवन-चरित्र न लिखा न सही पर अन्य कवियोंकी तरह अपना परिचय तो सम्यक् रूपसे दे गये होते । लेकिन उन्होंने यह भी न किया । परिणाम यह है कि आज उनके सम्बन्धमें अभिज्ञता प्राप्त करनेके लिये मुझे एँड़ी-चोटीका पसीना एक करना पड़ रहा है ।

बघेलखण्डमें बेलापार नामकी एक रियासत है । वहाँके राजा साहब एक साहित्यानुरागी सज्जन थे । उन्होंने अपनी संरक्षतामें एक विराट कवि-सम्मेलन कराया था । वे चाहते थे

कि इसी बहाने हिन्दीके कवि एक दूसरेसे परिचित हो जायँ। उस सम्मेलनका नाम ही उन्होंने परिचय सम्मेलन रक्खा था। उसमें समस्यायें नहीं दी गयी थीं, कवियोंको केवल अपने परिचयमें कुछ कह कर बैठ जाना था।

इस सम्मेलनमें कवियोंकी अच्छी उपस्थिति हुई। किसीने अपनी सात पुश्ततकका परिचय दिया, किसीने अपनेको आदि कविका उत्तराधिकारी बताया, किसीने अपनेको देवी सरस्वतीका इकलौता क़रार दिया। तात्पर्य्य यह कि कवियोंने डींगकी लेनेमें एक दूसरेको मात करनेकी कोई बात उठा न रक्खी।

कवि 'चच्चा' भी यहाँ उपस्थित थे। उनका परिचय अपनी सादगीमें फ़र्द था। उन्होंने कहा—

हास सुधा बसुधा बरसावैं
बहाइ सुछन्दनकी पुरवैया।
सज्जनकी सेवकाई करैं
शुकचीजन सों सतसंग करैया॥
खास गुलाम गुनीजनके
गुनगाहकके गुनगान गवैया।
नाथके नाथ अनाथके नाथ
हैं मेरेहुं नाथ सो नागनथैया॥

कवि 'चच्चा' आत्म-विज्ञापनसे इतना भागते थे कि इस परिचयमें उन्होंने अपना नाम तक नहीं प्रकट किया। वे यदि आत्म-

भाषामें काव्यरचना करते तो अपनी प्रतिभाके बलपर अन्य कवियोंसे कहीं आगे बढ़ जाते, पर उनकी स्वाभाविक सुरुचिने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया।

इन बातोंसे प्रकट होता है कि कवि 'चचा' बड़े उन्नत विचार-के मनुष्य थे। ऐसे मनुष्यके आचार और विचारमें विषमताकी बू नहीं आ सकती। ढकोसला और ढोंगसे उसकी पटरी कभी नहीं बैठती। वह दूसरोंमें भी इन दोषोंको देखता है तो उनपर खाक डालकर चुप नहीं बैठता।

यही हाल कवि 'चचा' का था। हिन्दू-समाजकी कमजोरियोंपर पर्दा डालनेका प्रयत्न उन्होंने कभी किया ही नहीं। सच पूछिये तो पोल-प्रकाशनका ढोल ही उन्होंने अपने गलेमें डाल लिया था।

एक गोरक्षाका ही प्रश्न लीजिये। हमारे समाजमें गोरक्षा-का वास्तविक रूप क्या है? गाय अगर दूध देना बन्द कर दे तो उसे किसी ब्राह्मणको दान कर दीजिये; यह जानते हुए कि वह दूसरे ही दिन उसे क़साईके हाथ बेच आयेगा। यही हमारी संसार-प्रसिद्ध गोभक्तिका सच्चा स्वरूप है। कवि 'चचा' कहते हैं—

गोद्विजकी सेवा अति मानिये पुनीत आप
गोधन सों प्रेम सदा गोरस अघाइये।
करिये गोदान भूरि, लहिये गोलोकवास,
भारी भवसागरको गोपदी बनाइये॥

गोरोचन भाल पै सुगेह सोधि गोमयसों
धरिये गोग्रास बाद आप भोग पाइये।
गोमुखी सम्हारियें गोहारिये गोविन्दजूको
चूचर बुलाय बूढ़ी गाय बेच आइये॥

गोरक्षाकी तरह साधुसेवाको भी हमारे यहाँ ऊँचा पीढ़ा दिया गया है, जो सर्वथा उचित है। खेद केवल इस बातका है कि साधु कहे जानेवालोंकी संख्या बेतरह बढ़ गयी है और उनमें सौ पीछे निन्नानबे धूर्त, लम्पट और कुमार्ग-गामी हैं। भिक्षा माँगना उनका अधिकार हो गया है। उन्हें भिक्षा देना आपका कर्तव्य हो गया है। इस समय असंख्य 'साधुओं' के भरण-पोषणका भार इस गरीब देशको उठाना पड़ रहा है।

यह भार भी हम वहन करनेको तैयार हैं, यदि इनके द्वारा देशका कुछ हित-साधन हो। इन्हें न घर-बारसे मतलब, न बीबी-बच्चोंकी चिन्ता। ऐसा जन-समूह यदि देश-सेवाके कार्य्यमें सङ्गठित किया जा सके तो स्वयंसेवकोंके अक्षय स्रोतका उद्गम-स्थान बन सकता है। हमारे नेताओंको इस ओर ध्यान देना चाहिये।

काशीमें सुमिरन बाबा नामके एक प्रसिद्ध साधु रहा करते थे। इनके शिष्य और शिष्याओंकी गणना सैकड़ोंमें की जाती थी। लोग इन्हें पहुँचे हुए महात्मा समझते थे। यह केवल कुछ

इने-गिने लोग जानते थे कि बाबाजी एक नम्बरके विषयी और मद्यपी हैं। एक बार कवि 'चच्चा' को भी इनका दर्शन मिला था।

पौषका महीना था। रात नौ बजनेका समय था। जाड़ा कहता था कि मैं ही रहूँगा। कवि 'चच्चा' आगके सामने बैठे हुए किसी गम्भीर विषयपर विचार कर रहे थे। इसी समय किसीने बाहरसे दरवाजा खटखटाया। उन्होंने बाहर निकल कर देखा कि एक मोटा-तगड़ा आदमी कम्मल ओढ़े, जटा बढ़ाये, हाथमें लम्बा चिमटा लिये खड़ा है। कवि 'चच्चा' ने पूछा क्या है ?

उसने कहा—'मेरा नाम है टहलराम। मुझे सुमिरन बाबाने आपके पास भेजा है। आप इस समय क्या कर रहे थे ?'

'मैं सोच रहा था कि हमारे काव्यशास्त्रमें जो नायिका-भेदका प्रकरण है उसमें अब कुछ समयोचित संशोधन और परिवर्धन होना चाहिये।'

'सम्भव हो तो इस विषयपर कल विचार करियेगा। आज आपको सुमिरन बाबाने इसी समय बुलाया है। अत्यन्त आवश्यक कार्य्य है।'

जाड़ेके मौसिममें रात दस बजे किसी भले आदमीको बुला भेजना कवि 'चच्चा' को कुछ जँचा नहीं। लेकिन सुमिरन बाबा काफी प्रभावशाली व्यक्ति थे, उनकी आज्ञाकी अवहेलना भी उचित नहीं थी। यह सब सोच कर कवि 'चच्चा' टहलरामके साथ चल पड़े।

सुमिरन बाबाका स्थान बहुत दूर नहीं था। वे भीतरके एक कमरेमें दुशाला ओढ़े हुए व्याघ्र-चर्म्मपर बैठे थे। कमरेमें और कोई नहीं था। कवि 'चच्चा' को उन्होंने बड़े आदरसे अपने पास बैठा कर कहा—'पंडितजी! क्षमा कीजियेगा, आपको इस समय जाड़े-पालेमें कष्ट दिया। गाँजेकी चिलम तैयार है, दम लगाइयेगा?'

कवि 'चच्चा' ने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज! मैं गाँजा नहीं पीता। सुमिरन बाबाको कवि 'चच्चा' की इस अपूर्णता-पर आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने टहलरामको पुकार कर कहा—'अरे ओ टहलराम! पंडितजी गाँजा नहीं पीते। उनके लिये पान सुरती ले आ।'

कवि चच्चाने कहा—'महाराज! मैं पान तो खालूँगा पर मैं सुरती नहीं खाता।'

सुमिरन बाबाके आश्चर्यका अब कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—'आप सुरती नहीं खाते, गाँजा नहीं पीते, तो कैसे जीते हैं?'

कवि 'चच्चा' इस प्रश्नका कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सके। सुमिरन बाबाने टहलरामसे कहा—'बेटा टहलू! तुझे सुरतीकी तारीफमें एक कवित्त याद है, जरा पंडितजीको सुना तो दे।'

टहलरामने 'जो आज्ञा' कह कर यह कवित्त सुनाया—

नाकमें सुबासको सनेसो कहै नस्य बनि
मुखमें सुस्वादु पीक पान सङ्ग सुरती।
आलस जम्हाई निद्रा करत अकाज तिन्हैं
तुरत सँहारि सरसावै हिय फुरती॥
सहज सँचारै भाईचारा चार भाइनमें
राजाको गिलौरी रङ्क चूनै सङ्ग सुरती।
कहत सिरात नाहिं गुनन तिहारे
सौ सुर-ती सी प्यारी मोंहिं सु-रती भर सुरती॥

सुमिरन बाबाके पास एक शीशेका गिलास रक्खा था। उन्होंने टहलरामसे उसे भर देनेका इशारा किया। वह कवि 'चच्चा' की ओर देखकर झिझका। सुमिरन बाबा समझ गये। उन्होंने बिगड़ कर कहा—'अबे, डरता क्या है? ये तो अपने आदमी हैं। इनसे क्या संकोच!'

यह आश्वासन पाकर टहलराम उठा और एक बोतल लाकर उसने सुमिरन बाबाके सामने रख दिया। उन्होंने कवि 'चच्चा' से पूछा—'कहिये पण्डितजी! आप भी लीजियेगा?'

कवि 'चच्चा' यह हाल देखकर मग्न रह गये। उन्हें चुप देख कर बाबाजीने कहा—'ये ऐसे न पियेंगे। श्यामा और शान्ता-को बुलालो। वे आग्रह करेंगी तो अवश्य पीलेंगे।'

श्यामा और शान्ता कौन? कवि चच्चाने जिज्ञासाकी दृष्टिसे टहलरामकी ओर देखा। उसने उनके कानमें कहा कि

श्यामा और शान्ता दो चेलिनें हैं जो रात्रिमें बाबाजीकी सेवा करती हैं।

यह सुनकर कवि 'चच्चा' की घबराहट और भी बढ़ गयी। उन्होंने झट कहा—'नहीं मान्यवर! मुझे क्षमा कीजिये, मैं शराब पीता ही नहीं।'

सुमिरन बाबा हँस कर बोले—'पता नहीं आप मनुष्य हैं या पशु। जरा सोचिये कि स्वर्गमें अगर उर्वशीने आपको सोमरस दिया और आपने लेनेसे इनकार किया तो वह आपको कितना बड़ा उल्लू समझेगी।'

कवि 'चच्चा' की महा पतित आत्मा इस सम्भावित दुष्परिणामकी कल्पनासे व्यग्र नहीं हुई। वे अब जानेकी सोच रहे थे। उन्होंने कहा—'महाराज! अब इन बातोंको जाने दीजिये और बताइये कि आपने मुझे इस समय क्यों याद किया?'

'हाँ ठीक है, वह बात तो रह ही गयी। क्या यह सच है कि आप कवि हैं और दरिद्र हैं?'

'मैं दरिद्र अवश्य हूँ पर कवि हूँ या नहीं इसका निर्णय आने वाली पीढ़ियाँ करेंगी।'

'खैर, अगर आप कवि हैं ता मैं प्रापकी दरिद्रता दूर कर सकता हूँ। आप मेरे लिये एक काव्य-ग्रंथ लिखें।'

'ग्रंथका विषय क्या होगा?'

'मेरी प्रशंसा। उसके प्रकाशन और प्रचारका प्रबन्ध मैं कर लूँगा। आपको ग्रंथ लिख कर मुझे दे देना होगा।'

'प्रशंसामें किन किन बातोंका उल्लेख आवश्यक समझा जायगा?'

इसका उत्तर बाबाजीका इशारा पाकर टहलरामने दिया—'आपको लिखना होगा कि बाबाजी परमहंस हैं, पतित-पावन हैं, मुमुक्षुओंके एकमात्र आधार हैं, परमार्थ-पारावारमें पड़े हुए प्राणियोंके एक मात्र कर्णधार हैं। उनकी सेवा जो तन-मन-धनसे करता है वह राज-दर्बारमें आदर पाता है, शत्रुपर विजय पाता है, पुत्रका मुँह देखता है, रोगसे रहित होता है, पापसे मुक्त होता है, लोकमें यश पाता है, मुक़द्मोंमें फ़तह पाता है, इत्यादि। संक्षेपमें पुस्तक ऐसी हो कि उसे पढ़ कर महाराजके शिष्योंकी संख्या दसगुनी हो जाय। पुस्तकका नाम होगा बाबा-बिरदावली।'

यह सुनकर कवि 'चच्चा' का हृदय क्रोध और घृणासे भर गया। इस गर्हित कार्य्यके लिये बाबाजीको दूसरा कोई नहीं मिला! अपने मनोगत भावोंको दबाते हुए उन्होंने कहा—'अच्छा, कल मैं बतौर नमूनेके कुछ लिख कर आपके पास भेजूँगा। आपको पसंद आया तो पुस्तकमें हाथ लगाऊँगा।'

दूसरे दिन श्रद्धेय श्री सुमिरन बाबा को डाकसे एक ख़त मिला। उसमें लिखा था—

बाबा-बिरदावली नामक प्रस्तावित
पुस्तकके एक छंदका
नमूना

साधु भये जग-बन्धन तोरि
बटोरि रहे तपकी सत पूँजी।
लोग कहैं सब भोग तजे
अब जोग करैं चरचा नहिं दूजी॥
पाल पखाल सों पेट फुलाय
ढकेलि रहे विष शक्कर सूजी।
चेलिनको रसकेलिनमें
उपदेश निरंतर देत गुरूजी॥

यह छंद सुमिरन बाबाको पसन्द आया या नहीं, इसका मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। पर यह निश्चय-रूपेण मालूम है कि इस पत्रका उत्तर कवि चचाको नहीं मिला, और बाबा-बिरदावली नामक पुस्तक नहीं लिखी गयी।

१०

एक अनुपान

'सीधी-सादी भाषामें—सहज-सरल भावसे—पतेकी बात कहना, यही कवि 'चचा' की विशेषता थी। निशाना अचूक पर बजाय घावके गुदगुदी पैदा करनेवाला, बातें नित्यके जीवनकी पर नवीनतामें पगी हुई, भावोंका अविकल बहाव पर गहराई लिये हुए—ये खूबियाँ कवि 'चचा' के ही बाँटे पड़ी थीं।'

इतना कह कर बिलवासीजीने अपने चारो ओर देखा। यह देख कर वे खुश हुए कि लाला मल्लूमल की आँखें खुली थीं और लाला घासीरामका मुँह बन्द था।

उन्होंने फिर कहा—'आप कोई भी विषय लीजिये मैं साबित कर दूगा कि महाकवि 'चच्चा' ने उस विषयपर अपनी प्रतिभा-का प्रकाश डाला है।'

कवि 'चचा' को इस कसौटीपर कसना हमलोग चाहते जरूर थे, पर संयोगसे उस समय कोई भी विषय नहीं सूझ पड़ा। यों तो हजारों विषय हृदयमें उठते रहते हैं पर जरूरत पड़नेपर आज एक भी जबानपर न आया।

ऐसा अकसर होता है। यह कोई नयी बात नहीं है। आज-से दस बरस पहले मैं अगर एक कुत्तेके लिये कोई नाम तज-वीज कर सकता तो आज किसी नील-गोदामका मनेजर होता।

उस समय मैं नौकरीकी तलाशमें था। खबर लगी कि अमुक निलहे साहबको एक क्लर्ककी आवश्यकता है। मैंने अर्जी भेजी और मुलाकातके लिये बुलाया गया। जिस समय मैं साह-बसे बातें कर रहा था उसी समय उनका अर्दली एक ग्रेहाउण्डके बच्चेको लेकर वहाँ आया। साहबने कुत्तेको पसन्द किया और कहा मैं इसे पालूँगा।

मेरी ओर देख कर साहबने पूछा—'तुम इसके लिये कोई नाम suggest कर सकते हो?'

यह क्या मुशकिल काम था! टामी, टीपू, टाइगर, टेकी, टीमल, टेल्हू आदि पचासों नाम थे जो मैं suggest कर सकता था, पर क्या कहूँ! उस समय मुझे एक भी न याद आया। मैं चुप रहा, मानों जन्मका गूँगा था।

साहब खफा हो कर बोले—'तुम नालायक हो। तुम मेरे कुत्तेके लिये एक नाम नहीं suggest कर सकते तो और क्या काम करोगे? क्या मैं अपने कुत्तोंके नामकरणके लिये दूसरा क्लर्क रक्खूँगा?'

यह बीती मैंने अब बिसार दी है, पर कभी स्मरण हो आती

है तो जान पड़ता है कि दिलको कोई मुट्ठीमें पकड़ कर मसल रहा है। मैं कितना बड़ा बेवकूफ था। और नहीं, अगर केवल इतना कह देता कि 'साहब! स्वयं मेरा नाम क्या बुरा है, यही कुत्ते का भी रख दीजिये' तो भी साहब खुश हो जाते। इससे उन्हें एक प्रकारकी सुविधा ही होती। एक नामके पुकारनेसे दो जीव आ खड़े होते। एक हाथ जोड़ता, दूसरा दुम हिलाता। एक कहता Yes Sir, दूसरा कहता भों-भों।

खैर, बिलवासीजीकी चुनौती किसीने स्वीकार नहीं की। किसीसे न हुआ कि कोई बढ़िया विषय उपस्थित करके उनके कथनके सत्यासत्यका निर्णय कर ले।

थोड़ी देर हम लोगोंकी प्रतीक्षा करके बिलवासीजीने कहा—"आप लोग खामोश हैं, इस लिये मैं ही उदाहरणके लिये एक विषय उपस्थित करता हूँ। दुष्टोंका विषय ले लीजिये। उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये यह प्रश्न कभी ठीकसे हल नहीं हुआ। कोई कहता है कि उन्हें क्षमा करते जाइये और उनके साथ उपकार करते रहिये। कोई कहता है कि उनका रास्ता बचाइये और उनसे भागते फिरिये। फिर ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि उन्हें दे मारिये और ठीक कर दीजिये।

इन बातोंसे जान पड़ता है कि दुष्टोंके साथ उचित व्यवहार-का प्रश्न विवादग्रस्त है। कवि चचाने इस सम्बन्धमें अपनी

राय न प्रकट की होती तो मुझे आश्चर्य्य होता। उनका कहना है कि—

> रामकी रीझ सों रीझतु है जग
> औरकी खीझ गुनौ न भयावह।
> योग यथा निवहौ सबसों मिलि
> बालक वृद्ध युवा नर मादह॥
> आँखि दिखाइ जु कोऊ चलै
> चट चाँपि चपेटि करौ चित ताकँह।
> देत रह्यौ कविराज 'चच्चा'
> नित नीचनको अनुपान उपानह॥

यहाँ हमारे 'कविराज' ने केवल अनुपान बताया है; वास्तविक औषधि कैसी होगी यह उसने आपकी कल्पनापर छोड़ा है।

यह मानना पड़ेगा कि महाकवि 'चच्चा' की रचनाओंका मूल्य साहित्यिक होनेके अतिरिक्त ऐतिहासिक भी है। भारतीय जन-समाजका जो चित्र उन्होंने कई मौक़ोंपर खींचा है वह आगे चल कर इतिहासके विद्यार्थियोंके लिये प्रामाणिक माना जायगा। केवल २०–२५ वर्ष पहलेकी बात है कि हम लोग अँगरेज़ोंकी सूरतसे डरते थे। बड़े-बड़े लखपती रेलके पहले और दूसरे डब्बोंमें अँगरेज़ोंको बैठे देख उसमें घुसनेका साहस नहीं करते थे। कवि चच्चाने एक गाँवमें किसी गोरेको जाते कभी देखा

था। गाँववालोंमें उसे देखकर हड़कम्प फैल गया। लोग भाग चले। कवि चच्चासे ही इस घटनाका वर्णन सुनिये—

पंडित पुजारी भारी रहे जे त्रिपुण्डधारी
सके नहिं सम्हारी झारी संख और घण्टा।
सतुआ औ पिसान फेंकि भकुआ किसान भागे
बालक बिसारे सारे खेल कूद टण्टा॥
भयसों भभरि भागि भीतर 'चचा' जू गये
नसाके करैया भूले चिलम और अण्टा।
अजगर है बाघ है कि कुञ्जर उन्मत्त कोऊ
दैत है कि दैया देखो एक है फिरण्टा॥

जुग-जुग जियें हमारे महात्माजी; उन्होंने असहयोग आन्दोलनकी ऐसी ओझाई चलाई कि इस प्रकारके भयका भूत हमारे दिलसे अब भाग गया। शुरूमें हमारे देशके कुछ गिरे हुए लोगोंने अँगरेजी वेषभूषाको इसीलिये ग्रहण किया था कि अपने भाइयोंपर आसानीसे धाक जमा सकें। पर अँगरेजोंके भयके साथ साथ अँगरेजी वेषभूषाका आदर भी जाता रहा। अब अपने किसी भाईके शरीरपर अँगरेजी पोशाक देखकर हमें हँसी आती है, और उसकी बुद्धिहीनतापर दया आती है। स्वयं अँगरेज भी उससे घृणा करते हैं।

कवि 'चच्चा' की कवितामें आपने एक खास बात यह देखी होगी कि वे अधिकतर ऐसे शब्दोंका प्रयोग पसन्द करते थे

जिनसे, नित्यकी बोलचालमें व्यवहृत होनेके कारण, हमारा घरू सम्बन्ध हो गया है। स्यात् यही कारण है कि उनकी उक्तियाँ हमारे हृदयमें घर कर लेती हैं।

हमारी बोलचालकी भाषामें कुछ शब्द ऐसे आगये हैं, जिनका प्रयोग हमारे लिये केवल आवश्यक नहीं बल्कि अनिवार्य्य हो गया है। 'साला' इसी प्रकारका एक शब्द है। इस शब्दका बहिष्कार कर दीजिये तो ज़ोरदार भाषाका अन्त हो जाता है। इस शब्दकी सत्ता आज्ञामें, आदेशमें, वाद-विवादमें, यहाँ तक कि लाड़-प्यारमें भी देखी जाती है। यह शब्द न होता तो आप घरमें नौकरोंको या स्टेशनपर कुलियोंको कैसे पुकारते ? ज़मीन्दार अपने असामियोंको कैसे पुकारता ? जायदादका झगड़ा पड़नेपर भाई-भाई एक दूसरेको कैसे पुकारते ?

जब मैंने देखा कि महाकवि 'चच्चा' की भाषा सभ्योचित और ज़ोरदार होते हुए भी बोलचाल की है तभी मुझे विश्वास हो गया कि उन्होंने किसी-न-किसी सम्बन्धमें साला शब्दका प्रयोग अवश्य किया होगा। मुझे आपको सूचित करते हर्ष हो रहा है कि मेरी धारणा बिलकुल ठीक निकली। कवि 'चच्चा' की एक कुण्डलिया इस प्रकार है—

जी जाने जैसी जरै उर अन्तर यह आग।
भारत-सी या भूमिको कैसो भयो अभाग॥

कैसो भयो अभाग काग माँगैं इन्द्रासन ।
हंसन ठिकरा चुगैं धुनैं शिर कांपै आसन ॥
बल विक्रम व्यापार बुद्धि वैराग्य सब छीजा ।
स्यार भये हम आज रहे हम जिनके जीजा ॥

११

भविष्यकी आशा

'क्यों बिलवासीजी ! आपने कुछ दिनों तक स्कूल मास्टरी भी तो की है ?'—मुं० छेदीलालने पूछा ।

'अजी, एक जमाना हुआ । मेरा पढ़ाया हुआ सेठ चिरौंजी-लालका लड़का तबसे बी. ए. पास हुआ, विलायत गया, मेम ले आया और अब अपने बापको old fool पुकारता है ।'

'देशको ऐसे ही स्पष्टवादी नवयुवकोंकी आवश्यकता है ।'

'आपने अपने नवयुवकोंके सम्बन्धमें कभी विचार किया है ?'

'मैं इतना जानता हूँ कि वे ही हमारे भविष्यकी आशा हैं ।'

'यदि वे हमारे भविष्यकी आशा हैं तो हमारी आशाका भविष्य क्या है—यह ईश्वर जाने । मेरा तो ख़याल है कि ऊँची कक्षाओंसे अँगरेजी ढङ्गकी शिक्षा पाकर निकले हुए नवयुवक देशके किसी मसरफ़के नहीं रह जाते ।'

'आप सरासर अविचार-बुद्धिसे काम ले रहे हैं ।'

"हरगिज़ नहीं ! आप ही कहिये कि इनके द्वारा देशका अभी तक क्या उपकार हुआ है ? स्वतन्त्रताकी आँधियाँ आयीं और

निकल गयीं—ये हिले तक नहीं। दस-पाँच अमर वीर-बाँकुरोंके नामकी आड़में मुँह छिपाकर बैठे रहनेके सिवा इन्होंने और किया क्या ?

अपने शिक्षित नवयुवकोंमेंसे ९० प्रतिशत आपको ऐसे मिलेंगे जिनमें न जीवन है न जीवट, न स्वाभिमान है न स्वदेशाभिमान। है क्या—धँसी हुई आँखें, पीला चेहरा, कंकाल-सा शरीर; स्वभावमें अविनय, आचारमें अनीति, विचारमें उच्छृंखलता; और अपने देश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृतिके प्रति घोर उदासीनता। बिना दीपकके दीवट देखने हों तो इन्हें देख लीजिये।

मेरे मित्र लाला फकीरचन्दने झाँसीसे लिखा कि मेरा छोटा भाई आपके मकानके पास अमुक बोर्डिङ्गमें रहता है, कभी-कभी उसका हाल-चाल ले लिया करिये कि पढ़ाई-लिखाई ठीक चल रही है या नहीं। आप जानते ही हैं मेरा स्वभाव कितना औढर है, मैंने सोचा क्या हर्ज है, कभी-कभी इस लड़केकी खोज-खबर ले लिया करूँगा। समय पाकर मैं दूसरे ही दिन इस कर्त्तव्यको पूरा करने घरसे चला।

मैं बोर्डिङ्गमें पहुँचा। उस समय कमरा भीतरसे बन्द था। मैंने दरवाजा थपथपाया। आवाज आयी 'बैठो'।

मैंने समझा मुझसे बैठनेके लिये कहा जा रहा है। मैंने बाहर हीसे पूछा—कहाँ बैठूं ? आवाज आयी—बैठो नहीं, बेटो,

वेटो। अब मैं समझा कि वेटो माने wait करो याने ठहरो। मैं ठहर गया।

लगभग १५ मिनटके वेटोके बाद दरवाजा खुला। दरवाजा खोलने वाला व्यक्ति—क्या कहा जाय! एक बार मुझे भ्रम हुआ कि मैं लड़कियोंके बोर्डिङ्गमें तो नहीं चला आया। अवस्था १८ वर्षकी रही होगी। जान पड़ता था कि मूँछोंने जब-जब निकलनेका अपराध किया तब-तब उनकी खबर 'राजारानी* सोप' से ली गयी थी। गर्दन सुराहीदार, कमर कमानीदार, गाल चिकने और आबदार, मानों किसी पेटेण्ट गोंदसे चपकाये गये हों। माँग जैसे कसौटीपर कंचनकी लीक…………"

'या जैसे कोयलेके अड़ारमें पगडंडी'—लाला मलूमलने कहा।

"मल्लूमलजी! आप कृपा करके बीचमें मत बोलिये। सारांश यह कि गो मैं स्वकीया परकीयाके झगड़ेमें न पड़ूँगा पर इतना अवश्य कहूँगा कि सूरत हूबहू किसी नायिका-सी थी। महाकवि केशव होते तो आश्चर्य नहीं कि अपने पके बालों पर अफसोस करने लगते।

मैंने नमस्कार किया और कहा कि मेरा नाम बिलवासी है।

उसने जवाब दिया—'Good-morning Mr. Bill Boss! लेकिन आप हैं कौन? Your face is rather funny.'

* यारू अड्डानेका एक प्रसिद्ध साबुन

मैं कहने ही जा रहा था कि मेरा नाम बिलवासी है, Bill Boss नहीं; और मेरा चेहरा अगर Funny है तो आपकी बलासे, पर उसने मुझे रोक कर फिर कहा—'Why did you disturb me at my toilette? आप जाइये, मैं आपको एक कौड़ी न दूँगा। On principle I am opposed to begging'

यह एक रही। साहित्य-सेवाके अतिरिक्त और कोई काम न होनेसे लोगोंने मुझे दो-एक बार उचक्का जरूर समझ लिया है; और आप लोगोंके साथ उठने बैठनेसे कभी-कभी मैं आवारा भी समझा गया हूँ, पर आज तक मुझे किसीने भिखमंगा नहीं समझा था। मैंने त्योरी चढ़ाकर कहा—'महाशय! मैं भिखमंगा नहीं हूँ।'

'मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आप भिखमंगे नहीं हैं, though you look like one खैर, आप अपना मतलब कहिये।'

'मैं जानना चाहता हूँ कि आपकी पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है।'

'अगर आप मुझसे बेहूदे सवाल करेंगे तो I shall order my servant to deposit you in the dust-bin.'

'नहीं महाशय! आप बुरा न मानें। मैं वास्तवमें यही

जाननेके लिये आया हूँ कि आपकी तबीयत पढ़ने-लिखनेमें लग रही है या नहीं !'

'Oh I see! अब मैं समझ गया। जान पड़ता है आप एक Suitable match की तलाशमें हैं। इसीलिये आप मेरी पढ़ाई और चाल-चलनका पता लगा रहे हैं। लेकिन पहले मेरे एक सवालका जवाब दे दीजिये—Does the girl play tennis ?'

मैं नाहक यहाँ आया। अब मैं पछता रहा था। खेद है फकीरचन्दजीको अपने भाईके पास भेजनेके लिये मैं ही मिला। मैं लौटते ही उन्हें लिख दूँगा कि 'यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी।'

बात करते-करते मैं कमरेके अन्दर चला गया था। वहाँ कोनेमें टेबलपर एक सुन्दर-सा सिंगारदान रक्खा था। उसके सामने हैज़लीन, वैसलीन, पोमेड, पाउडर, लवेण्डर, कंघी, बाल ऐंठनेके सीकचे, नाखून गोल करनेकी रेती और न जाने और कौन कौन सी—नवयुवकोपयोगी—चीजें रक्खी थीं।

मैंने उसके अन्तिम प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और उठकर चलने लगा। मेरी तबीयत खट्टी हो गयी थी, मैंने निश्चय कर लिया था कि अब किसीके भाई-भतीजेके फेरमें न पड़ूँगा। मैंने कमरेसे बाहर आते-आते सोचा कि इस नालायकने मुझे

बहुत कुछ कहा है, मैं भी इसे कुछ कहता चलूँ। इसलिये मैंने सिंगारदानकी ओर देखते हुए कहा—'कृपया आप यह बताइये कि आप फकीरचन्दजीके भाई हैं या बहिन ?'

यदि हमलोगोंसे किसीने इस प्रकारका प्रश्न किया होता तो हम लोग झेप कर चुप हो जाते, पर उसने इसका भी उत्तर दिया। मैं उसका उत्तर अपने साथ लेता आया।"

'क्या उसने लिख कर उत्तर दिया था ?'—मुं० छेदीलालने पूछा।

'नहीं, उतार कर। उसने अपनी चट्टी मेरे ऊपर फेंकी जिसे मैं उठाता आया।'

'लेकिन था बेवकूफ। कम-से-कम फुल-बूट तो फेंकता'—लाला घासीरामने कहा।

पूर्व इसके कि लाला घासीरामकी बातपर कोई हँसे बिल-वासीजीने झट दूसरी चर्चा छेड़ दी। उन्होंने कहा—"सज्जनो! हमारी शिक्षाप्रणाली अत्यन्त दोषावह है; चरित्र-गठन ऐसी आव-श्यक चीजका उसमें रत्तीभर भी ध्यान नहीं रक्खा गया है। आप कहेंगे कि चट्टीके प्रकरणने मुझे कालिजके नवयुवकोंके विरुद्ध उभाड़ दिया है, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उनके गुण-दोष-निरूपणमें मैंने अविचार बुद्धिसे काम नहीं लिया है। यह उनका दोष नहीं वरन् दुर्भाग्य है कि उन्हें नैतिक शिक्षा प्राप्त नहीं होती। इसके लिये वे दयनीय हैं, भर्त्सनीय नहीं।

अगर आप आधुनिक शिक्षा-प्राप्त नवयुवकोंके बीचमें कुछ दिन रह कर उनके कार्य्यकलाप और चित्तवृत्तियोंका अध्ययन करें तो आप अपनेको मेरे विचारोंसे सहमत पायेंगे। आपको सुनकर आश्चर्य्य होगा कि महाकवि 'चच्चा' मेरे विचारोंसे सहमत थे। उन्होंने किसी नवयुवककी आकांक्षाओंका विश्लेषण इस प्रकार किया है—

काहू धनी की मिलै दुहिता
जेहिं ब्याहि भरौं घर द्रव्य दहेजी।
तापै 'चचा' मरि जायं निसन्तति
सैंत सुम्पति मोहिं सहेजी॥
जीवनमें न समाजको बन्धन
धन्धनमें सुख-सेज गहेजी।
ऐसो मिलै पुनि हौं न रहौं
मदिरा गनिकागन सों परहेजी॥

सज्जनो! मैं साथही यह भी कहूँगा कि आधुनिक शिक्षा-प्रणालीके मत्थे सारा दोष पटककर स्वयम् अलग हो जाना सत्य की आँखोंमें धूल झोंकना है। युवकों और बालकोंके अभिभावक उन्हें कालिज या स्कूल भेज देनेमें ही अपने कर्त्तव्यका अन्त समझते हैं। सदाचार, शिष्टाचार, धर्म्म-कर्म्म, संयम-नियम आदि-की शिक्षा तो दूरकी चीज़ है हम किसी प्रकारकी औद्योगिक शिक्षाका भी दिया जाना उनके लिये आवश्यक नहीं समझते। इसीका परिणाम है कि—

हिन्दी उर्दू पढ़े पढ़े कछु ए.बी.सी.डी ।
दफ्तरमें घहरायँ खेतमें जैसे टीडी ॥

महाकवि 'चच्चा' के पड़ोसमें बाबू उमरावसिंह नामके एक धनी सज्जन रहते थे । एक दिन यकायक उनके मकानसे रोने-पीटनेकी आवाज आने लगी । कवि 'चच्चा' घबड़ाये कि पड़ोसी पर अचानक क्या विपत्ति टूट पड़ी कि ऐसा कुहराम मच गया । वे दौड़े हुए वहाँ गये और नौकरोंसे पूछने लगे कि क्या बात है, कौन मर गया है ? नौकरोंने यह सुनतेही इन्हें गाली देना शुरू किया । कवि 'चच्चा' बेचारे पिटते-पिटते बच गये । अन्तमें उन्हें मुहल्लेवालोंसे असली हाल मालूम हुआ । बात केवल इतनी थी कि बाबू उमरावसिंहके लड़केने अपनी मातासे आज कहा कि मैं कल-कारखानोंका काम सीखनेके लिये विलायत जाना चाहता हूँ । बस इसी बातपर घरमें हाहाकार मच गया था ।

जान पड़ता है इसी घटनाके आधार पर कवि 'चच्चा' ने लिखा है—

बेटा सीख सोहावनी घरमें बैठे खाहु ।
गुन अनुभवके कारनै दूर देस जनि जाहु ॥
दूर देस जनि जाहु नहीं तुम कुली खलासी ।
उत्तम कुलमें जन्म अहौ पुनि भारतवासी ॥
क्या लंदन क्या रोम कहा फिर काबुल कोटा ।
संग फिरै तकदीर चलौ घर बैठो बेटा ॥

१२

सवा तीन मन

'क्यों महाशय! आपको एकसे दस तककी गिनती पूरी याद है?'—यह प्रश्न पं० बिलवासी मिश्रने लाला मल्लूमल-से किया।

लाला मल्लूमल उस समय पेटके बल लेटे हुए कुछ गा रहे थे। क्या गा रहे थे—इस विषयपर लाला घासीराम और लाला झाऊलालमें मतभेद है। लाला घासीरामका कहना है कि मल्लूमलजी गा रहे थे—

> सड़कपर किसने गड़ाई लालटेन।
> कहाँसे आये मुंशी दरोगा कहाँसे आई बड़ी मेम॥

और लाला झाऊलालका कहना है कि मल्लूमलजी गा रहे थे—

> कहीं देखा है तुमने मेरा सनम?
> मेरे सनमकी दो ही निशानी, छोटा सा कद और गोरा बदन॥

खैर, इतना तय है कि लाला मल्लूमल कुछ गा रहे थे, और इतनी एकाग्रतासे गा रहे थे कि बिलवासीजीकी बात उनके

श्रवण-पथ तक पहुँच भी न पायी। बिलवासीजीने फिर पूछा—'क्यों महाशय, आपको एकसे दस तक गिनती पूरी याद है ?'

इस बार बिलवासीजीका प्रश्न उनके कर्ण-रन्ध्रोंमें प्रवेश कर गया और वे उठ बैठे। ऐसा जान पड़ा कि इस प्रश्नने उनके अन्तरतममें किसी प्रकारकी अव्यवस्था उत्पन्न कर दी। मुझे आश्चर्य हुआ। किसीकी प्रकृतिको पहचाना वास्तवमें बड़ा दुष्कर है। यह कौन जानता था कि लाला मल्लूमल भी किसी बातपर नाराज हो सकते हैं !

यों तो लाला मल्लूमलके लिये उठकर बैठना भी किसी जिमनास्टिकसे कम नहीं है पर आज उन्होंने जिस स्फूर्तिका परिचय दिया वह सर्वथा सराहनीय है। वे एक ही साँसमें उठे और बिलवासीजीके पास जाकर खड़े भी हो गये।

बिलवासीजी अभी तक स्थितिको नहीं समझ पाये थे। उनका कहना है कि जिस समय उन्होंने लाला मल्लूमलको अपनी ओर आते देखा उन्होंने समझा कि वे उनसे गले मिलने आ रहे हैं; पर शीघ्र ही उन्हें अपनी भूलका ज्ञान हो गया। लाला मल्लूमलने उनसे कहा—'पण्डितजी ! इस तरहके प्रश्न करके आप मेरा अपमान करते हैं; और मेरी आदत है कि जो मेरा अपमान करता है उसे मैं दण्ड देता हूँ।'

बिलवासीजी अब चौकन्ने हो गये थे पर चुप थे। लाला मल्लूमलने पूछा—'आप जानते हैं मेरा वजन क्या है ?'

बिलवासीजी फिर भी चुप रहे। लाला मल्लूमलने स्वयं अपने प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—'मैं सवा तीन मनसे कुछ ही कम हूँ, और जिसको मैं दण्ड देना चाहता हूँ उसके ऊपर लड़खड़ा कर गिर पड़ता हूँ।'

यह कहकर लाला मल्लूमलने बिलवासीजीके पास ही लड़खड़ाना शुरू किया। उस समयका चित्र अभी तक हम लोगोंके स्मृति-पटपर यथावत् खिंचा हुआ है। कौन जानता था कि बिलवासीजी ऐसे निरे साहित्यिकमें जीवन और जागृतिका अकूत भण्डार भरा पड़ा है। बकसमें बन्द स्प्रिंगदार खिलौना ढक्कन खोलने पर जिस तेजीसे बाहर निकल पड़ता है उसकी दसगुनी तेजीके साथ बिलवासीजी अपनी कुर्सीके बाहर निकल पड़े। दूसरे क्षण हम लोगोंने उन्हें लाला मल्लूमलसे कई गजके फ़ासलेपर खड़ा पाया। वे वहीं खड़े-खड़े कह रहे थे—'लाला मल्लूमलजी! यह आप क्या कर रहे हैं? आपको लड़खड़ाना है तो किसी निर्जन स्थानमें जाकर लड़खड़ाइये। आप व्यर्थ नाराज़ हो रहे हैं।'

लाला मल्लूमल लड़खड़ाते हुए उनकी ओर बढ़े और बोले—'मैं गिन कर दस बार आपके ऊपर गिरूँगा जिसमें आप जान जायँ कि मुझे दस तक गिनती याद है।'

बिलवासीजीने पीछे हटते हुए कहा—'नहीं, माफ़ कीजिये, मुझे कवि गंगकी मौत नहीं मरना है। आप छोटीसी बातको

इतना तूल दे रहे हैं। मेरा आशय केवल यह था कि अगर संयोग-वश आपको दस तककी गिनती भूल गयी हो तो महाकवि चच्चाकी एक कविता आपको सुनाऊँ जिसे याद कर लेनेसे दस तक गिनती स्वयमेव याद हो जाती है।'

इन्हीं अवसरोंपर बिलवासीजीकी बुद्धिका लोहा मान लेना पड़ता है। उन्होंने जब देखा कि मल्लूमल उनकी ओर बढ़तेही चले आ रहे हैं तब उन्होंने कवि 'चच्चा' के नामका टोना चलाया। इस नामका प्रभाव लाला मल्लूमल ऐसे सवा तीन मनके मिट्टीके ढूहेपर भी पड़े बिना नहीं रहा। उन्होंने अपना लड़खड़ाना बन्द किया और कहा—'अच्छा, कवि चच्चाके नामपर मैं आपको क्षमा करता हूँ। सुनाइये कवि चच्चाने क्या कहा है?'

यह कहकर लाला मल्लूमलजी अपने स्थानपर लौट आये और पूर्ववत् पेटके बल लेट रहे।

लाला मल्लूमलको पेटके बल लेटा देखकर बिलवासीजीकी जानमें जान आयी। कुर्सीके आसपासकी जगह अब निरापद हो गयी थी। वे अपने स्थानपर लौट आये और बैठकर अपने बिखरे हुए विचारोंको बटोरने लगे। सरपर पहाड़को लड़खड़ाते देख गंभीरसे गंभीर मनुष्यके विचार अस्त-व्यस्त हो जायँगे।

बिखरे हुए विचारोंको बटोरकर इस योग्य करनेमें कि वे दूसरोंके सामने रक्खे जा सकें, काफी समय लगता है। इधर

कवि 'चच्चा' की कथा सुननेके लिये मित्र-मण्डली बेक़रार हो रही थी। मुं० छेदीलालने लाला मल्लूमलके कानमें कहा कि आप कृपाकरके बिलवासीजीके पास जाकर एक बार और लड़खड़ाइये।

लेकिन इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी। बिलवासीजीने कहा—"सज्जनो! मुझे खेद है कि महाकवि 'चच्चा' को आप ऐसे मूर्ख और उपद्रवी जीवोंसे पाला नहीं पड़ा, नहीं तो वे इस सम्बन्धमें भी कुछ अमर साहित्य छोड़ गये होते।

मेरे एक साधारणसे प्रश्नपर लाला मल्लूमल आज उत्तेजित होकर मेरी हत्या करने पर उद्यत हो गये—ऐसी हत्या कि घर वालोंको लाश भी ढूँढे न मिलती। लेकिन मैं अभी अपने शरीर और जीवात्मामें आपसका सम्बन्ध बनाये रखना चाहता हूँ। मुझे अभी संसारमें बहुत काम करने हैं। देव-ऋण और पितृ-ऋणको कौन कहे मैं अभी उसी ऋणको नहीं भर पाया हूँ जो पिताजीने मेरी शादीके समय लिया था, अस्तु।

आज मुझे महाकवि 'चच्चा' का एक छप्पय प्राप्त हुआ, जिसकी विशेषता यह है कि उसे याद कर लेनेसे एकसे दस तककी गिनती याद हो जाती है, उसी तरह जैसे क माने कबूतर, ख माने खरगोश आदि याद कर लेनेसे पूरी वर्णमाला याद हो जाती है।

जान पड़ता है यह छप्पय उस समयका कहा हुआ है जब कवि 'चच्चा' अवधमें राजा सर निहोरसिंहके यहाँ नौकर थे।

मालिक लोग अपने नौकरोंमें जिन गुणोंकी आशा रखते हैं उनका ऐसा तथ्यपूर्ण वर्णन मुझे अन्य कहीं नहीं देखनेमें आया। जिस किसीको दुर्भाग्यवश ऐसी नौकरी करनी पड़ी होगी वह इसके एक-एक अक्षरकी सचाई सकारेगा। आप भी सुनिये और समझिये—

एकै पग पै ठाढ़ बांधि दूनों कर कांपै।
त्रिभुवन माहिं महान मोहिं सर्वोपरि थापै॥
चार बात सहि लेत सजग कीन्हें पाँचो अग।
आपु करै उपवास सजावै मोंकों षट्रस॥
सातो दिवस समान सब, पहर आठ डोलत रहत।
नौकर ऐसो होय जो, दस कर सों सेवा लहत॥

इस छप्पयमें मैं एक संशोधन करना चाहता हूँ; आशा है कवि 'चच्चा' की स्वर्गीय आत्मा मुझे इसके लिये क्षमा करेगी। मेरे खयालसे इसके यदि तीसरे चरणमें 'चार बात सहि लेत' के स्थानमें 'चार लात सहि लेत' लिखा गया होता तो अधिक उपयुक्त होता।

राजा निहोरसिंह, जिनके यहाँ कवि 'चच्चा' नौकर थे, बुरे आदमी नहीं थे पर दुर्भाग्यसे पल्ले सिरेके बेवकूफ थे। देवी लक्ष्मी जब साधारण उल्लुओंको छोड़कर काठके उल्लुओंपर सवारी गाँठती है तब स्थिति वास्तवमें बड़ी चिन्ताजनक हो जाती

है। असली मालिक तो टूटी चारपाईकी तरह एक कोनेमें पड़ा रहता है और सारा अधिकार किसी ओछे, स्वार्थी और स्वेच्छाचारी व्यक्तिके हाथमें चला जाता है। एक रियासतका हाल मैं जानता हूँ जहाँकी सारी हुकूमत एक रखेलीके हाथमें है।

राजा निहोरसिंहके यहाँ उनके मनेजरकी तूती बोलती थी। सारा राजकाज उसीके हाथमें था। वह आलसी, अयोग्य, दम्भी, दुःशील, शक्की और सङ्कीर्ण चित्तका आदमी था। परिणाम यह हो रहा था कि रियासत धूपमें पड़े ओलेकी तरह दिनपर दिन छीज कर सत्यानाश हो रही थी। महाकवि 'चच्चा' यह देखकर दुःखी होते थे पर लाचार थे; जानते थे कि मनेजरके खिलाफ़ कुछ कहना अपने सरको ओखलीमें डालना होगा। उनके ऐसे कर्तव्यनिष्ठ आदमीके लिये बुराईको देखकर मूक बने रहना भी एक प्रकारका नैतिक पतन था। पेटके लिये उन्हें इस पतनको भी स्वीकार करना पड़ा।

वे चुप रहे पर उनकी लेखनी चुप न रही। हास्यरसका आश्रय लेकर उसने उनके पतनकी अवस्थाका चित्रण कर ही दिया; लेकिन थोड़ी बुद्धि वाला मनुष्य भी भाँप लेगा कि इस हास्यकी खोलीमें हृदयकी तीव्र वेदना भरी हुई है। वे कहते हैं—

हाजी हाजी हज किये, सन्त लिये हरिनाम।
हौं नर पामर अधम अस, पेटहिं चारों धाम॥

पेटहिं चारो धाम काम सब नाम खुसामद ।
मालिक रहैं प्रसन्न होय तनख्वाह बरामद ॥
बढ़िया मोयनदार मिलै जब ताजी ताजी ।
'चच्चा' कविता छांड़ि करैं तब हांजी हांजी ॥

१३

बातकी बतास

आजकी बैठक शुरूमें बिल्कुल नहीं जमी। आपसका वार्तालाप बासी भात-सा फीका बना रहा। एक न एक कारणसे सभी खिन्न थे। लाला घासीरामकी आँखें तो साफ़ ही डबडबायी हुई थीं; उनकी पत्नीने आज उन्हें उजबक कह दिया था। मैं भी दुःखी था; 'मध्याह्न' के सम्पादकने मेरा लेख वापस कर दिया था। बेचारे लाला मल्लूमल भी उदास थे; घरमें किसी पूजाके कारण आज उन्हें व्रत रखना पड़ा था; इस समय तक सिर्फ़ दो सेर दूध पीनेको मिला था।

सौभाग्यसे इसी समय पं० बिलवासी मिश्र आ गये। वे सदाकी तरह प्रसन्नवदन थे। आते ही वे ताड़ गये कि आज किसी कारणसे सारी मित्र-मण्डली सियापा मना रही है। वे तुरन्त स्थितिको सुधारनेकी फ़िक्रमें लगे।

उन्होंने कहा—'सज्जनो! यह एक प्रश्न बहुत दिनोंसे मेरे मनमें उठा करता है कि सरपर रखनेकी चीज़का नाम पग-ड़ी कैसे पड़ा? आप लोग इसका कोई कारण बता सकते हैं?'

इस प्रश्नको सुना तो सभीने पर उत्तर किसीने न दिया। पंडितजीका यह वार साफ़ खाली गया। उन्होंने फिर कहा—'सज्जनो! जो चारो वेद पढ़ता है वह चौबे होता है; जो दो वेद पढ़ता है वह दूबे होता है। इसलिये जो एक भी वेद न पढ़ा हो उसे मैं अबे पुकार सकता हूँ?'

अब भी किसीके चेहरे पर हँसीकी रेखा न देख पड़ी। लाला घासीरामने नाक सिकोड़ते हुए कहा—'भाड़में जायँ आप और आपकी बातें।'

'अच्छा, भाड़में जानेके पूर्व मैं कुछ काव्य-चर्चा कर सकता हूँ? हिन्दी काव्यमें मेरी बड़ी लम्बी पहुँच है।'

हुआ करे! हमें इससे क्या? जो अपनी स्त्री द्वारा उजबक पुकारा जायगा, या सम्पादक द्वारा जिसका लेख लौटाया जायगा या दूधके सहारे जिसे पहाड़-ऐसा दिन काटना पड़ेगा, उसे कवितासे क्या सरोकार! काव्य-चर्चासे यदि रोते हुए हँसने लगें तो गुलकन्दसे गुर्दे जी जाया करें।

बिलवासीजीने कहा—'सज्जनो! हिन्दी काव्यमें सचमुच मेरी बड़ी लम्बी पहुँच है। मैंने बहुत-सी ऐसी पुस्तकोंका अध्ययन किया है जिनके आधुनिक साहित्यिक नामतक नहीं जानते। पद्माकर कृत पद्मावत तो मुझे हदसे ज्याद: पसंद आयी। फिर द्रौपदी कृत चीर-हरन-लीला की मैं आपसे अब

क्या तारीफ करूँ! सुदामाका बनाया हुआ तन्दुल-महाकाव्य साहित्यका एक अनमोल रत्न है। महाकवि मुद्राराक्षसके बनाये हुए सत्यहरिश्चन्द्र नाटकको मैंने दो बार पढ़ा है; शुरूसे आखीर तक और फिर आखीरसे शुरू तक। हरिऔधजीके लोकप्रसिद्ध प्रहसन चुभती-चारपाईको तो मैंने निर्निमेष नेत्रोंसे पढ़ा है।'

बिलवासीजी इतना कहकर रुक गये। कारण जो कुछ रहा हो, पर इस समय हवा कुछ बदली हुई-सी जान पड़ी। लाला घासीराम सोच रहे थे कि स्त्री प्रेमके आवेशमें भी अपने पतिको उजबक पुकार सकती है। मैं सोच रहा था कि सम्पादक मूर्ख-तावश भी किसी लेखको लौटा सकता है। लाला मल्लूमल सोच रहे थे कि जिन्दगीमें एक दिन उपवास करना स्वास्थ्यके लिये शायद हितकर भी हो सकता है।

बिलवासीजीने देखा कि उनकी बातोंका ईप्सित प्रभाव हम-लोगोंपर पड़ रहा है। उन्होंने कहा—"सज्जनो! मैं अपने मित्र लाला राघोरामका उपकार कभी न भूलूँगा। मैं कविताकी शक्ति-को पहले असीम नहीं मानता था पर उन्होंने अपना निजी अनु-भव मुझे सुनाकर मेरा मत पलट दिया।

लाला राघोरामजी एक रोज बड़े सुबहके निकले-निकले १० बजे दिनके समय घर लौटे। उस समय उन्होंने अपनी स्त्रीको

कोपभवनमें पाया। कारण शायद यही था कि वे बिना उसकी इजाजतके सवेरे घरसे चल दिये थे।

वे यह सोचते हुए लौटे कि घरपर खाना तैयार होगा, खूब डटकर खाऊँगा। यहाँ घरमें आग भी न जली थी; स्त्री अलबत्ता एक कोनेमें बैठी हुई क्रोधसे सुलग रही थी। कई बार उन्होंने गोल शब्दोंमें कहा कि मेरे पेटमें कुछ शून्य-सा मालूम पड़ रहा है पर उनकी स्त्रीपर इस कहनेका असर भी शून्यसे अधिक न हुआ। तब उन्होंने दो-एक बार मुँह खोल कर कहा कि मुझे बड़ी भूख लगी है; लेकिन कहना न कहना बराबर रहा।

लाला राघोरामजीने उसे शिक्षा दी, लालच दी, धमकी दी पर फल कुछ न हुआ। यह सब करते-धरते घड़ीकी दोनों सुइयाँ १२ पर आ मिलीं। लाला राघोरामका पेट और पीठ सट कर एक हो गया। बेचारे बड़े फेरमें पड़े; क्या करें, क्या न करें!

इसी समय उनके दिमागमें एक बिजली-सी कौंध गयी। यकायक उन्हें स्मरण हो आया कि कथासरित्सागरमें या चरकसंहितामें या राजतरंगिणीमें या ऐसी ही किसी पुस्तकमें उन्होंने कभी पढ़ा था कि सङ्गीतसे जंगली जानवर भी वश हो जाते हैं। उन्होंने मनमें यह तर्क किया कि यदि संगीतसे वन्य पशु वशमें आ जाते हैं तो कवितासे सम्भव है अपनी स्त्री वशमें आ जाय। यह बात

ध्यानमें आनी थी कि लाला राघोरामका चेहरा आशासे चमक उठा और उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—

अरे कछु भोजन दे अलबेली।
धरत न धीर उदर अब छन भर, बड़ी बेदना झेली॥
दया चीन्हि अब लादे भोजन, लादे झटपट लादे।
भूखा मरा न मेरे कुलमें, कोई बाप न दादे॥
कौन खता हमसों बनि आई, क्या ऐसी बदफेली।
कोप किये क्यों नैन तरेरे, बनी गालकम हेली॥
बड़ा बिलम्ब लगाया तूने, बहुत बताया बुत्ता।
मैं हूँ तेरा पति परमेश्वर, नहीं पालतू कुत्ता॥

हवा अब बिल्कुल बदल गयी थी। लाला घासीराम सोचने लगे थे कि स्त्रीने उजबक कह दिया तो क्या हर्ज है। आज उसने केवल उजबक कहा, कल सम्भव है 'मेरे प्यारे उजबक' कहे। मैं सोच रहा था कि उस सम्पादकने मेरा लेख लौटा दिया तो क्या; मैं स्वयं एक पत्रिका निकालूँगा, चाहे वह एक ही अंक निकल कर बन्द हो जाय, और उसमें सबके पहले उसी लौटाये हुए लेखको प्रकाशित करूँगा।

बिलवासीजीने अपनी बातोंकी लड़ी नहीं टूटने दी। उन्होंने कहा—"लोग कहते हैं कि आजकल कविता पहले-सी नहीं होती। कैसे हो? कवियोंकी सारी स्वच्छन्दता तो आपने छीन ली। उनके पैर तो आपने छान दिये, अब वे चौकड़ी भरें तो कैसे। सारी

मजेदार बातोंपर तो पहरा-चौकी बैठ गयी, वे करें तो क्या करें ? अब न कुच है, न नितम्ब है, न नीवी है, न नाभिकुण्ड है, न त्रिवली है, न रोमावली है और न कदली खम्भ-से जंघे हैं। अच्छी कविता अब क्या खाक होगी !

लेकिन यह बात नहीं है कि अब हिन्दीमें अच्छी कविता करनेवाले हैं ही नहीं। इस समय मेरे हाथमें कविवर पंडित औदुम्बर शर्म्मा कृत 'कलकल' नामक महाकाव्यकी एक प्रति है। ऐसा सुन्दर ग्रन्थ है कि वाह ! इच्छा होती है कि कविकी लेखनीको हृदयमें भोंक लूँ। प्रस्तावना भागके पहले दो छन्द जरा सुनिये—

माला फेरूँ नाक दबाऊँ
नित्य बजाऊँ घण्टी।
इससे आखिर राम मिलेंगे
इसकी क्या गारण्टी ॥१॥
यहाँ नहीं कोई आया है
पी अमृतकी घूँटी।
खाओ खेलो मौज करो
बस यही हमारी ब्यूटी ॥२॥

भाषा-माधुर्य्य और रचना-सौष्ठवके साथ-साथ सादगी और साफगोईका इतना सुन्दर सम्मिश्रण बड़े भागसे कहीं देखनेको मिलता है। ग्रंथके अन्तमें कवि कहता है—

न तनमें रोग
न मनमें हो काँटा।
हाथमें हो बल
लगाऊँ शत्रुओंको चाँटा॥
पड़ा-पड़ा मैं लूँ
खुर्राटे पर खुर्राटा।
घरमें भरा हो
घी शक्कर और आटा॥

'पंडितजी!'—लाला झाऊलालने पूछा—'इस छंदका नाम क्या है?'

'साहित्यिकोंमें इसका नाम है मुक्तकण्ठा पर साधारण लोग इसे बगलोल छन्दके नामसे पुकारते हैं।'

'मैं ऐसे छन्दोंका घोर विरोधी हूँ।'

'ठीक है! मैं एक जानवरको जानता हूँ जो सूर्य्यके प्रकाश-का घोर विरोधी है।'

इस उत्तरके बाद लाला झाऊलालको और कुछ कहनेका साहस न हुआ। वे चुप हो रहे। बिलवासीजीने कहा—"सज्जनो! संसारमें जितने सफल आन्दोलन हुए हैं सबकी प्रारम्भमें हँसी उड़ायी गयी है। हिन्दी उर्दूको एक करके हिन्दुस्तानी नामकी गंगा-जमनी भाषा बनानेके आन्दोलनका भी यही हाल है। हमारी गवर्न्मेंण्टने निश्चय किया है कि फौजके खर्चसे जो कुछ दमड़ी-

छदाम उसके पास बच रहेगा वह 'हिन्दुस्तानी एकाडेमी' को भेंट कर दिया करेगी! ईश्वर करे यह आन्दोलन इतना सफल हो कि एकाडेमीको एक और क्लर्ककी आवश्यकता पड़े; और मैं उस जगहके लिये चुना जाऊँ।

मेरा उस जगहपर विशेष हक़ है। एकाडेमीके जन्मके बरसों पहले मैं एक ऐसी भाषाका स्वप्न देखा करता था जिसमें केवल हिन्दी-उर्दू नहीं बल्कि अँगरेजी भी मिलाई जा सके। हिन्दीके पुराने शब्दोंको नया रूप देकर, उर्दू और अँगरेजीके सहयोग-से एक ऐसी भाषा बननी चाहिये जो सबको पसन्द हो, सबको ग्राह्य हो। मैंने उन दिनों एक ऐसी भाषा अपने कामके लिये बना भी ली थी पर अफ़सोस कि उस भाषामें मैं किसीसे बातें करता था या पत्र-व्यवहार करता था तो लोग मुझे—समझते थे उल्लू पर—कहते थे कि बड़ा सनकी है। अन्तमें सब ओरसे हारकर मैं केवल अपनी स्त्रीके साथ उस भाषाका व्यवहार करता था। मैंने प्रयागसे उसे एक ख़त लिखा था, जो मुझे जहाँ तक याद है इस प्रकार था—

चित्तेश्वरी

हृदयकी भीतरूनी बातें किसीसे न कहनी चाहिये पर तुमसे कहता हूँ। इस टमय मेरा जीवन अत्यन्त लुत्फ़-दायक*

* Time + समय = टमय

है। मेरी लिखी एक किताब स्कूलोंमें रिकमेण्डित हो गयी है। आशा है मेरा नाम शीघ्र ही बड़े लेखकोंमें दर्जित हो जायगा। मैंने एक चल-कल (साइकिल) भी ख़रीद ली है और उसे चलानेमें बड़ा सिद्धपाद हो गया हूँ।

तुम्हारा डियर
बिलवासी

लाला झाऊलालने पूछा—'पण्डित जी! यह आप कैसे जानते हैं कि जिससे आप ऐसी भाषामें बातें करते थे वह आपको केवल उल्लू समझता था?'

'ख़ैर, जो कुछ समझता रहा हो। अब इन बातोंमें क्या रक्खा है। जिक्र था, महाकवि 'चच्चा' का ....'

'उनका तो आपने अभी तक नाम भी नहीं लिया। उनका जिक्र कब था?'—लाला घासीरामने पूछा।

'हाँ, ठीक है, मैं भूल रहा था। अच्छा जाने दीजिये।'—यह कहकर बिलवासीजी चुप हो गये।

लाला घासीरामको सारा क्रुध कोसने लगा। उनकी मूर्खता इतनी कभी न अखरी थी। पर अब लाचारी थी, क्या किया जाय!

हाल-हजारा

जो सुनता था वही थू-थू करता था। देश-प्रेम नहीं, स्वाभिमान नहीं, तो कम-से-कम बुद्धि तो मना करती कि ऐसा मत करो।

किसीको साहस नहीं हुआ कि सहसा इस बातपर विश्वास कर ले; पर लाला झाऊलालने एक छपी हुई नोटिस जेबसे निकाल कर दिखायी। उसमें लिखा था—

जयचन्द जयन्ती

हमारी लिबरल सभाने आगामी रविवारको बड़े समारोहके साथ जयचन्द जयन्ती मनानेका निश्चय किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि महात्मा जयचन्द हमारे दलके जन्मदाता, पेशवा और उन्नायक थे। उनके समयमें पृथ्वीराज-ऐसे कुछ गरम दलके लोग स्वाधीनताके लिये अवैध उपायोंसे काम लेते थे; उसी समय महात्मा जयचन्दने विपक्षियोंसे सहयोग प्राप्त करनेका राजमार्ग हमारे लिये खोल दिया। हमें उचित है कि ऐसे महापुरुषके चरणोंमें श्रद्धांजली चढ़ाकर हम अपने कार्य्यके लिये प्रबोध, प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त करें।

इस विज्ञप्तिको सुनकर ऐसा कोई न था जिसका हृदय क्रोध, लज्जा और घृणासे डाँवाडोल न हुआ हो। ऐसे अवसरों पर जबानपर लगाम रखना असाधारण आत्म-निग्रहका काम है। फिर इस समय उसकी जरूरत भी क्या थी? जिसके जीमें जो आया उसने उसे कह डाला।

मिलवाभी जीने अभी तक आजके वार्तालापमें कोई भाग नहीं लिया था। जिस तरह कोई बड़ा-बूढ़ा बच्चोंकी तोतली बातें सुन कर प्रसन्न होता है उसी तरह वे भी हम लोगोंकी क्रोधपूर्ण बातें सुन कर मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा—'सज्जनो! मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि आप लोगोंमें इतना देश-प्रेम तो अवश्य ही है कि दूसरोंको दिल खोल कर गाली दे सकें। आखिर इन ग़रीब जिपरलों पर इतना कोप क्यों? ये बेचारे हैं किस गिनतीमें कि इनके ऊपर क्रोध किया जाय! फिर कुछ भी हो ये हैं तो अपने भाई।'

'इसीका तो अफसोस है'—मुं० छेदीलालने कहा।

'जयचन्द जयन्तीमें ऐसी क्या बुराई आप लोगोंने देखी कि आपेके बाहर हो गये। इसमें किसीको क्या संदेह हो सकता है कि जयचन्द एक महापुरुष थे।'

'हैं, आप ऐसा कहते हैं!'—कई लोग एक साथ बोल उठे।

"कहना पड़ता है। आप ही सोचिये क्या हिन्दू-जाति प्रलय

तक राज्य करनेका बीड़ा लेकर आयी थी ? जिस प्रकार अधिक मीठा खानेसे मुँह बँध जाता है उसी प्रकार अधिक राज्य करनेसे जी ऊब जाता है। जयचन्दने वही किया जो हिन्दू चाहते थे; उसने स्वतंत्रतासे उनका पिण्ड छुड़ाया।

जयचन्दके महापुरुष होनेका एक प्रमाण यह भी है कि महाकवि 'चच्चा' ने उन्हें याद करके सम्मानित किया है। वे कहते हैं—

बीतीं सदी पै सदी दस बीस
 पचीसन पार भयो गनि हारे।
राजन राज अखण्ड थके
 लपके भरि गोरन परोस पुकारे॥
भारत भार अपार भयो
 जोहि सौंपि विदेशिन होत सुखारे।
फूलैं, फलैं, झूलैं, खिलैं,
 सब दीप दिपैं जयचन्द हमारे॥

जयचन्दकी कृपासे स्वतंत्रता तो हमारी चली गयी पर उसका भय अब भी हमारे दिलसे नहीं गया है। उसके नाम तकसे हम घबराते हैं। कहीं स्वतंत्रता भूल कर फिर अपने देशमें लौट आयी तो वह चैन, वह आराम, वह स्वच्छन्दता कहाँ रह जायगी जो आज है।

यह सतयुग देखें कब तक टिकता है ! न राजकाजका झंझट

है, न जोखिम है, न जवाबदेही है। कानमें तेल डाल कर बेफ़िक्री-की नींद सो रहता हूँ। बड़े लाटको हर महीने एक बड़ी सी तनख़्वाह दे देता हूँ और अपना सारा काम करा लेता हूँ।

यह कहना कठिन है कि हम दुनियासे निराले हैं इसलिये हिन्दू हैं, या हिन्दू हैं इसलिये दुनियासे निराले हैं। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुलामी जिसे सबने ठुकराया उसे हमने गले लगाया। हमें इसका फ़ख्र है कि इतनी बड़ी पृथ्वीपर पर-तन्त्रता को यदि किसीने अब तक शरण दे रक्खी है तो हमने।

कहा जाता है कि महाकवि 'चचा' ने हिन्दुओंकी वर्तमान अवस्थापर 'हाल-हुजारा' नामका एक ग्रंथ रोला छन्दोंमें लिखा था। ग्रंथ उत्कृष्ट श्रेणीका रहा होगा क्योंकि उसके दस-पाँच स्फुट छन्द जो लोगोंको अब याद हैं वे बड़े सुन्दर और भाव-पूर्ण हैं। जो मुझे याद हैं उन्हें मैं सुनाता हूँ—

बाम्हन पेट खलाय उगाहैं भिच्छा बेहरी।
छत्री मसला बाँधि जुटैं हैं जाय कचेहरी॥
भये पुरोहित लण्ठ कण्ठ तक ठेलैं पूआ।
रटैं मंत्र गुड़-चार करैं टैं टैं ज्यों सूआ॥
राजपूत निरबीज तजें केसरिया बाना।
लाँघि करैं संतोस रहै अस बाबा-नाना॥
साधू मठमें बैठि लियें सन्यास सरासर।
घरमें तिरिया नहीं पतुरिया तेरह बाहर॥

युवक वृन्द नामर्द गर्दमें मेलि जवानी ।
करें तिलाकी खोज ओजकी नहीं निसानी ॥
पढ़ि लिखि भये सपूत यही अनुभूत नतीजा ।
धता पिताको कीन्ह 'चचा' को कहैं भतीजा ॥
न्याय सांख्य वेदान्त उपनिषद औ षट् दर्शन ।
पढ़ि पढ़ि पण्डित भये जुरै नहिं पूरा भोजन ॥
राजनके दरबार हाल कहिये कछु कैसे ।
देस काजको आज पासमें रहे न पैसे ॥
तोड़े करें हजार नित्य उठि होंय मुजरा ।
उजड़ी प्रजा असंख्य राजका वैभव गुजरा ॥
देखि रहे कछु स्वप्न पड़े सुख सेज बिछौने ।
बिके पराये हाथ बने क्या खूब खिलौने ॥
छुआछूत अछूत भूत मजबूत जगायो ।
आपसमें बिलगाय एकता सबै नसायो ॥
खोकर निज सर्वस्व खूब सुख निद्रा सोकर ।
हो कर बारह बाट फूट आपसमें बोकर ॥
अभी नींदमें पड़े खात सदियोंसे ठोकर ।
तन पै लत्ता नहीं पेटको जुरै न चोकर ॥
कीरति नाँव-निशाँव बड़ोंका सर्वस कूड़ा ।
जो थे कंचन कभी आज हैं केवल कूड़ा ॥*

सज्जनो ! जिक्र था लिबरलोंका । मुझे खेद है कि आप लोग इनके प्रति इतनी अनुदारता प्रकट कर रहे थे, इन्हें इतनी

* हुआ समयका फेर हाय पलटी परिपाटी ।
जो थे कभी सुमेर आज हैं केवल माटी ॥
स्व० राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

खोटी-खरी सुना रहे थे। छोटे जीवोंपर क्रोध दिखाना उचित नहीं है। अपनी रुचि और योग्यताके अनुसार ये जो कुछ करते हैं करने दीजिये। मेरी रायमें ये इतने हेच और हेय नहीं हैं जितना आप इन्हें समझते हैं। अपनी करनीका यही काफी दण्ड इन्हें मिल रहा है कि ये बेचारे न तीनमें हैं न तेरहमें। जो आपही मर रहे हैं उन्हें मारनेसे क्या लाभ!

कवि 'चच्चा' के समयमें आजकलके लिबरल तो नहीं थे पर ऐसे लोगोंकी कमी भी नहीं थी जो जबानी जमाखर्चमें पारङ्गत और प्रस्ताव पास करनेमें हातिम थे। एक बार उन्हें इन लोगोंकी एक सभामें जानेका संयोग पड़ा। वहाँका हाल देखकर उनकी विनोद वृत्तियाँ जाग पड़ीं और उन्होंने लिख मारा—

टेक नहीं एका नहीं, नहीं खड्ग पै धार।
गुन बल साहस एक नहिं, मनमें उठै बयार॥
मनमें उठै बयार लीजिये खुद-मुखतारी।
भारत होय स्वतंत्र देसकी मिटै खुवारी॥
सोचत भई थकान 'चचा' चलिये अब लेटें।
नींद खुले पै काल्ह करेंगे फिरसे टेंटें॥

१५

रस परिपाक

मेरा अनुमान बिलकुल ठीक निकला। क्लबमें पूरे १२ सदस्य उपस्थित थे। मैंने कमरेके बाहर पूरे १२ जोड़े जूते गिने थे।

आज मैं ज़रा जल्दी आना चाहता था पर देर हो गयी। आधी दूर आकर टोपीके लिये मकान लौटना पड़ा था।

एक लड़केने अपने मकानकी छतसे गलीमें कूड़ा फेंकते हुए ललकारा कि बाबूजी अपना सर बचाइये। जब सहमा सर पर हाथ ले गया तो खयाल पड़ा कि टोपी मकान पर भूल आया हूँ।

उलटे पाँव मकान लौटा। बड़ा शोर मचाया। अन्तमें कम्बख़्त टोपी उसी कुर्त्तेके जेबसे निकली जो मैं पहने हुए था।

इसीसे मैं गाँधी टोपियोंके खिलाफ़ हूँ। अँगरेजी हैट पहनता होता तो क्योंकर जेबमें रख लेता और फिर भूल जाता! गाँधी टोपी पुरानी होने पर दो कौड़ीकी चीज है पर हैट पुराना होनेपर भी डोलचीका काम दे सकता है। खैर।

अब देर तो हो ही गयी थी, मैंने डरते-डरते क्लबके कमरेमें क़दम रक्खा। पं० बिलवासी मिश्रने मुझे आज जल्दी बुलाया

था; पर मैं देर कर बैठा। मैंने उनकी ओर देख कर कहा—'पण्डितजी! क्षमा कीजियेगा, देर होगयी।'

बिलवासीजीने कहा—'यह तो आपके लिये कोई नयी बात नहीं है। परमात्माके यहाँ जिस समय बुद्धि बँट रही थी उस समय भी आप देरसे पहुँचे थे।'

'अच्छा यह बताइये कि आपने मुझे आज जल्दी क्यों बुलाया था?'

'मुझे एक उड़ती हुई खबर मिली है कि आप किसी पत्रिका-के सम्पादक हो रहे हैं। सुन कर मेरा जी धकसे होगया। मैं एक लम्बी साँस लेने जा रहा हूँ।'

अजीब हाल है! जिधर देखिये उधर यही चर्चा! एक चिग्घाँभ-सी फैल रही है। राह चलते लोग मेरी ओर उँगली उठाते हैं मानों मैं कोई नम्बरी बदमाश हूँ। मैं नहीं जानता था कि सम्पादक होना इतना बड़ा अपराध है।

मैंने बिलवासीजीसे कहा—'हाँ महाराज! मैं इस समय एक प्रकारका सम्पादक तो अवश्य हूँ।'

बिलवासीजीने पूछा—'अच्छा यह बताइये कि आपको भीतरसे कैसा मालूम पड़ रहा है?'

'भीतरसे?'

'हाँ। हमारे एक मित्रको जब पहले डिप्टी कलक्टर होनेकी

सूचना मिली तो उन्होंने मुझे बतलाया कि जिस जमीनपर वह खड़े थे वह कुछ ऊपरको उठती हुई जान पड़ी और ऊपरका आसमान कुछ नीचेको खसकता हुआ जान पड़ा। इसी प्रकार आप अपना अनुभव बताइए। आपको सम्पादक होनेपर कैसा जान पड़ा? नीचेसे कोई चीज उभरती हुई जान पड़ी?'

'नहीं तो।'

'या ऊपरसे कोई चीज दबाती हुई?'

'बिलकुल नहीं।'

लाला मल्लूमलने पूछा—'शायद बीचसे कोई चीज फुद-कती हुई जान पड़ी हो।'

लाला मल्लूमलकी बातोंका जवाब कम लोग देते हैं। मैंने भी नहीं दिया।

लाला झाऊलालने कहा—'जरा आप बीचमें आकर बैठिये।'

'क्यों?'

'हमलोग आपको चारो ओरसे देखना चाहते हैं। हम-लोगोंने कङ्गारू देखा है, ऊद-बिलाव देखा है, दरियाई घोड़ा देखा है, आज एक सम्पादक देखनेको इच्छा है।'

'खैर इन बातोंको छोड़िये। अब तो जो कुछ होना था हो गया। अब बोलिये मैं क्या करूँ?'

बिलवासीजीने कहा—'करना क्या है ? आनन्दपूर्वक सम्पादन करिये ।'

'मुझे एक हास्य-रस-प्रधान पत्रिकाका सम्पादन करना है ।'

'हास्य-रस-प्रधान ?'

'जी हाँ ।'

'भला इसमें क्या तुक है ? अपने देशमें हास्य-रसकी क्या आवश्यकता थी ?'

'आप जानते हैं कि साहित्यके आचार्य्योंने नौ रस माने हैं ।'

'तो इससे क्या ? ज्योतिषके आचार्य्योंने नौ ग्रह माने हैं ।'

'बात यह है कि हमारे साहित्यमें शृंगार, शांत, करुण आदि रसोंकी यथेष्टता है पर हास्यरसकी बड़ी कमी है ।'

''होने दीजिये । पराधीन देशको हास्य-रससे क्या वास्ता । हमारे देशमें हास्यको लोग व्यर्थकी हाहा-ठीठी समझते हैं । हँसना असभ्यताका लक्षण है । बहुतसे घरोंमें बच्चोंको हँसते देख उनकी मरम्मत की जाती है । न्यायकी बात है कि यहाँ इस समय जो हास्यरसके लेखक हैं उन्हें विक्टोरिया क्रास मिलना चाहिये ।

एक धनी सज्जन कुछ दिनोंकी यात्राके बाद मकान लौटे । मुझे बुलाकर कहने लगे कि मेरी अनुपस्थितिमें नौकरोंने पूरी हरामखोरी की है । मैंने पूछा क्या आप कोई अन्तर्यामी देख

रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया—'नहीं अदहन्तआमी तो नहीं देख रहा हूँ पर मैंने सब नौकरोंको प्रसन्न चित्त और हँसते हुए पाया, इसीसे मैंने अनुमान किया कि उन्होंने हरामखोरी की। यदि उनसे काफी काम लिया गया होता तो वे हँसते हुए न दिखायी पड़ते।'

ऐसे देश और ऐसे समयमें हास्य रसका नाम लेनेके लिये महाकवि 'चच्चा' की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यह याद रखना होगा कि उनका हास्य भौंड़पनकी परिधिको पार करके हमारी उन सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करता था जिन्हें हम अपनी मूर्खता-वश धार्मिकताकी सनद दे बैठे हैं।

जैसे गङ्गा-स्नानकी बात लीजिये। हम समझते हैं कि गङ्गामें डुबकीमार कर जब हम बैकुण्ठके अधिकारी बन रहे हैं तो हमारे घरकी स्त्रियाँ क्यों पिछड़ी रहें। उन्हें भी गङ्गा स्नानकी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये, चाहे उनके लिये इसका उचित प्रबन्ध वहाँ हो या न हो। स्नान, विशेषतः स्त्रियोंके लिये, ऐसी चीज नहीं हैं कि बीच बाजारमें निबटाया जाय।

काशीके जनाने घाटों पर जाकर जरा देखिये। भले घरकी स्त्रियाँ महीन-से-महीन मलमलकी धोतियाँ पहने स्नान करने आती हैं। जिस समय पानीसे डुबकी मार कर बाहर निकलती हैं—एक समा बँध जाता है। लोग पूजा-पाठ भूल कर निगाहें सेंकने

लगते हैं। ध्यानमें मुँदी हुई आँखें खुल जाती हैं, गोमुखीमें फिरती हुई मालाएँ रुक जाती हैं।

महाकवि चचा किसी ऐसी ही घटनाको स्मरण करके कहते हैं—

साधक सोधि मनों मनसा
आनि सिद्धिकी साध समाधि है साधे।
गंगके तीर सिद्धासन मारि
धरे धुन ध्यान करैं अवराधे।
ताहि समय गुजरी उजरी इक
नाह पै आई लिये घट काँधे।
सिद्धको ध्यान छूट्यो उचट्यो
मन लै चली लै चली संगमें नाधे॥

सज्जनो! महाकवि चचा हास्यरसके आचार्य थे। पर साथ ही अन्य रसोंमें असमर्थ भी न थे। शृङ्गार-रसके नामपर नाक सिकोड़नेका फैशन उनके समयमें नहीं निकला था। उनकी शृङ्गार रसकी रचनाएँ मुझे कई याद हैं पर उनमें कपोल, केश, कामिनी आदि अनेक अश्लील शब्द आ गये हैं। हाँ, शान्तरसके परिपाकमें उन्हें पर्य्याप्त सफलता मिली है। सुनिये—

भूलहु न नाथ भये बामन बराह आप
छली औ मलीन कहौ मोकों बलिहारी है।
स्वारथ बिचारि ब्याहि लाये घर सिन्धुजाकों
नापै अब आज मोहिं लोभी निरधारी है॥

काम काज छाँड़ि सब पौढ़े छीर सिन्धु माहिं
    कौन मुँह लाइ मोहिं आलसी पुकारो है।
एक समै रीझे खूब कूबरीके कूबर पै
    आजु मोसों कूबर पै रीझनकी बारी है॥

१६

अगिया बैताल

शिष्टता और शालीनताकी मूर्ति पं० बिलवासी मिश्रको आज झल्लाया हुआ देखकर सबको आश्चर्य हुआ। इस झल का परिचय सबके पहले लाला मल्लूमलको मिला। सदाकी भाँति वे आज भी चाँदनीपर चारो खाने चित लेटे हुए थे। बिलवासीजीने आते ही उनके सरके नीचेसे तकिया खींच लिया और स्वयं उसे लगाकर लेट रहे। लाला मल्लूमलका सर जमीनसे टकराया और वे उठ बैठे।

इसके बाद बिलवासीजीने बगलमें बैठे हुए लाला झाऊलालके जेबसे पानका डब्बा निकाल लिया और पान खाकर उन्हें घूरने लगे, मानों आँखोंकी भाषामें कह रहे हों कि मैं सौ बार आपके पान खाऊँगा, देखें आप मेरा क्या कर लेते हैं।

लाला घासीराम कुरता हटाकर अपनी तोंद सहला रहे थे। पं० बिलवासी मिश्रने बिगड़ कर कहा—'लाला घासीरामजी! आपकी तोंदसे अश्लीलता टपक रही है। कृपया उसे फौरन ढँक लीजिये।'

बिलवासीजीका यह रुख देखकर हमलोग आपसमें काना-फूसी करने लगे। अवश्य कोई असाधारण बात हुई है! वे योंही मिजाज बिगाड़ने वाले आदमी नहीं हैं। उन्हें रास्तेपर लानेकी तदबीर सोची जाने लगी। मु० छेदीलालने कहा—'कहिये पण्डितजी! आज आपके ऊपर अगिया बैतालकी छाया कैसे पड़ गयी? दिमाग़ कुछ गर्म्म हो गया है क्या?'

लाला झाऊमल अपना पानका डब्बा छिपाते हुए बोले—'घरमें बैठे दिनभर भाड़ झोंकते हैं, दिमाग़ क्यों न गर्म्म होगा!'

लाला घासीरामने कहा—'जान पड़ता है राहमें किसीने सरपर दुहत्था जमा दिया है।'

लाला मल्लूमलने कहा—'मुझे एक हकीमने बताया था कि जिसके दिमाग़पर गर्मी चढ़ जाय उसे जूता पहनना छोड़ देना चाहिये। जूतेकी तासीर गर्म्म होती है।'

इस बातपर सभीको हसी आ गयी। बिलवासीजी भी हस पड़े। उन्होंने हमलोगोंकी ओर देखकर कहा—"मैंने कुछ मित्रों-के साथ जो उजड्डपनका व्यवहार किया है उसके लिये मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। बात यह है कि आज सुबहसे ही मेरा हृदय चोटपर चोट खा रहा है। आप ही सुनकर निर्णय कीजिये कि इतना सहकर कोई कैसे आपेमें रह सकता है।

आज सवेरे कलकत्तेके प्रसिद्ध प्रकाशक पं० हनुमान त्रिपाठी 'साहित्य-सङ्कट' नामक मेरी अप्रकाशित पुस्तकका सर्वाधिकार खरीदनेके लिये, पेशगीके रुपये लेकर, मेरे मकान पर मुझसे मिलनेके लिये आनेवाले थे। मैं अँधेरे-मुँह उठकर सब कामोंसे निवृत्त हो गया था और अपने कमरेमें बैठा हुआ बड़ी उत्सुकतासे उनकी राह देख रहा था। सात बजेके लगभग नौकरने आकर कहा कि एक साहब आपसे मिलना चाहते हैं। मैंने पूछा कि क्या नाम बताते हैं? उसने कहा रामदास तिरपाठी।

मैं इस नामके किसी व्यक्तिको नहीं जानता था। और फिर इस समय मैं पं० हनुमान त्रिपाठीके अतिरिक्त किसीभी त्रिपाठी या चौबे या दूबेसे न मिलता। मेरी दशा अभिसारिका-सी हो रही थी। मैंने नौकरको आज्ञा दी कि जाकर कह दो कि मालिक घरपर नहीं हैं, किसी दूसरे दिन आना।

मैं दो घंटे तक पं० हनुमान त्रिपाठीकी प्रतीक्षा करता रहा पर वे न आये। अब भी मैं निराश नहीं हुआ था। नौ बजे मैंने नौकरको बुलाकर कहा—'देखो जी, मैं जलपान करने जा रहा हूँ। पं० हनुमान त्रिपाठी नामके कोई सज्जन आवें तो मुझे फौरन खबर देना।'

नौकरने कहा—'वे तो आये थे पर लौट गये।'

'लौट गये?'

'हाँ ! आप हीने तो कहला दिया कि दूसरे दिन आना। लौटते वक्त आपको बड़ी गालियाँ दे रहे थे।'

'क्यों बे ! तू ने तो उनका नाम रामदास त्रिपाठी बताया था।'

'तब क्या सबेरे हनुमान जीका नाम लेता कि दिन भर खाना भी न मिले। इसी लिये तो मैंने रामदास कहा कि आप अर्थ लगा कर समझ लें।'

नौकरसे झौं-झौं करना बेकार था। मैं सर पीट कर बैठ रहा। मन कुछ शान्त हुआ तो कपड़े पहन कर बाहर निकला। रिश्तेकी एक दादी गङ्गा स्नानके लिये काशी आयी हैं। उन्हींसे भेंट करना था। कई साल पर उन्हें देखा। इधर थोड़े दिनोंसे वे दोनों आँखोंकी अन्धी हो गयी हैं। मुझे पास बिठा कर मेरे सर पर हाथ फेरने लगीं। मेरे सरको आगे पीछे अच्छी तरह टटोल कर बोलीं—'बेटा ! तेरा मुँह किधरसे शुरू होता है ?'

इस प्रश्नसे मेरे शरीरमें आग लग गयी। मैं सीधे मकान लौट आया।

किसी तरह दिन कटा, शाम हुई। स्त्रीने हुकम दिया कि अपने निकम्मे दोस्तोंकी मण्डलीमें जानेके पहले जरा ससुराल चले जाना और मेरे घर वालोंका हाल लेते आना। मैंने कहा जो आज्ञा।

मैं ससुरालसे होता आ रहा हूँ। ससुर जी नहीं थे। मेरा

छोटा साला, जिसकी उम्र सात बरस की है, मेरे पास खेलता-खेलता आ बैठा। कमरेमें एक मोमबत्ती जल रही थी। उसने मोमबत्ती बुझा कर पूछा—'जीजा जी! आपको दिखायी पड़ता है?' मैंने हँस कर कहा नहीं।

'तब क्या हमारे बाबू जी झूठ बोल रहे थे?'

मैंने खुश होकर पूछा—'क्या तुम्हारे बाबूजी मुझे अँधेरे घरका चिराग़ कह रहे थे?'

'नहीं, वे कह रहे थे कि तुम्हारा जीजा बड़ा उल्लू है।'

सज्जनो! अब आप ही इन्साफ़ कीजिये कि जिस मनुष्यके दिल पर इतने आघात पहुँचे हों वह अगर अपने दोस्तों पर गुस्सा न उतारेगा तो कहाँ उतारेगा? दोस्त आखिर हैं किस दिनके लिये। तब भी मैं अपने व्यवहार पर खेद प्रकट करता हूँ और आप महानुभावसे माफ़ी चाहता हूँ।"

हम लोगोंने एक दूसरेकी ओर देखा। लाला झाऊलालने लाला घासीरामके कानमें कुछ कहा। लाला घासीरामने मुं० छेदीलालकी ओर देख कर इशारा किया। मुं० छेदीलालने चौधरी बतासरायकी ओर आँख मारा। चौधरी बतासरायजी सर हिला कर मुसकरायें।

चार दोस्तोंका आपसमें आँख मारना, इशारा करना और कानमें बोलना ऐसा आपत्तिजनक नहीं है पर सी. आई. डी.

का कोई आदमी देख पाता तो यही समझता कि भारत सम्राट्के विरुद्ध साजिश हो रही है। उसका अनुमान ठीक निकलता। साजिश अवश्य हो रही थी, पर हमारे क्लबके सम्राट् पं० बिल-वासी मिश्रके विरुद्ध।

लाला झाऊलालने कहा—'बिलवासीजी! यह आपने अच्छा तरीक़ा निकाला है। सब जगहसे जले-भुने आइयेगा तो दोस्तोंमें बैठ कर झल उतारियेगा। किसीके पनडब्बे पर छापा मारियेगा, किसीके तोंद-ऐसे मर्मस्थलको अश्लील पुकारियेगा, और अन्तमें माफी माँग कर सब दोषोंसे बरी हो जाइयेगा। यह खूब रही! आप अच्छे निघरघट हैं! माफ़ीको आपने बड़ा सस्ता सौदा समझ लिया है।'

बिलवासीजीने बड़े विनम्र भावसे कहा—'सज्जनों! मुझे अपने आचरण पर बड़ा दुःख है। मुझसे अपराध हुआ। अब आप लोग क्षमा करनेकी दया दिखाइये।'

'इतने सस्ते आप नहीं छूट सकते'—मुं० छेदीलालने कहा—'इधर कुछ दिनोंसे आपकी मनमानी बढ़ती जा रही है। हम-लोगोंकी इच्छाओंको कुचलनेकी, हमलोगोंकी प्रार्थनाओंको ठुक-रानेकी, आदत-सी आपकी पड़ती जा रही है। महाकवि 'चच्चा' के जीवनके सम्बन्धमें आपको कई नयी बातें मालूम हुई हैं—आप खुद ही कह रहे थे। पर आपसे सुनानेकी प्रार्थना की जाती है तो

आप टालमटोल करते हैं। कई बार वादा करके भी आप गोल हो रहे। आज-कल करते महीनों हो गये। अगर आज आप अपना वादा पूरा करें तो हमलोग आपको क्षमा कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।'

मिलवासीजी आज दाँवमें आ गये। भाव-तावका मौक़ा न देखकर उन्हें क्षमाका मुँह माँगा मूल्य देना पड़ा। उन्हें मित्रोंकी आज्ञाके आगे सर झुकाना पड़ा। उन्होंने कहा—"सज्जनो! मैं अपनी उद्दण्डताका समर्थन नहीं करना चाहता पर प्रसङ्गवश यह कहनेके लिये बाध्य हूँ कि कवि 'चच्चा' सा महापुरुष भी अवसर पड़ने पर क्रोधका शिकार हो जाता था। इस बात पर हमें आश्चर्य्य न करना चाहिये। सच पूछिये तो महापुरुषोंकी यही त्रुटियाँ उनकी मानवताको प्रमाणित करती हैं और हम साधारण लोगोंके साथ उनका सम्बन्ध जोड़ती हैं।

अपने शहरके रईस नामधारी व्यक्तियोंसे कवि चच्चाको बड़ी शिकायत थी। उन लोगोंने इनकी सहृदयता और सौजन्यसे अनुचित लाभ उठाया। बड़े अफ़सरोंके आवागमन पर वे इनसे स्वागतगान और शोकोद्गार लिखा ले जाते थे और सभाओंमें पढ़ते थे। ये बेचारे नहीं करनेका ढङ्ग जानते न थे, जो आता था उसका मन किसी-न-किसी प्रकार रख देते थे।

पर सबसे अधिक पूछ इनकी होती थी निमंत्रण-पत्र लिखने-के लिये। जब किसी बड़े आदमीके लड़केकी शादी तय होती

थी तब वह आकर कहता था कि महाराज ! निमंत्रणपत्रके लिये चार लाइनकी कविता लिख दीजिये। लगनके दिनोंमें उनका कितना समय इसीमें चला जाता था। एक बार तंग आकर उन्होंने एक सेठका आग्रह यों पूरा किया—

गननायक लायक सकल, बनहु सहायक आज।
चरनोदक दै राखियो, गनमोदककी लाज॥
माघ मास शुभ सप्तमी, शुक्ल सोमद तारीख।
ऐसा ब्याहौं धूम सों, चाहे माँगौं भीख॥
रन्डी भडुआ आदि सब, संग पतुरिया पाँच।
नाच रंग रजगज परम, चलिये भरन कुलाँच॥
पुरजन परिजन विप्रजन, प्रियजन सज्जन-लोग।
चलि बरात संग उदरभर, लहिये मोहनभोग॥

पैसेवालोंका हृदय इतना विशाल होता है कि इस तरहके कामोंको वे अधिकांशतः मुफ्तमें कराना चाहते हैं; समझते हैं कि जिसके द्वारपर मैं जाऊँगा वह मेरे लिये इतना भी न करेगा। टकासे भेंट हो या न हो, पर उनका काम कर दीजिये तो वे प्रसन्न होंगे—कभी कभी मारे प्रसन्नताके आपको कोई दूसरा काम भी लगे-हाथ सौंप देंगे।

जान पड़ता है कवि 'चच्चा' को अधिकतर ऐसे ही धनिकोंसे पाला पड़ा था। ये शब्द बिना जी-जानसे कुढ़े हुए कोई कह नहीं सकता—

नाचरंग मुजरामें खल ये खजाने खोलि
खान-पान खातिरमें करैं खूब खरचा।
हाकिम हुकुमगें दयाइ दुम ठाढ़े रहैं
पावत प्रसन्न ह्वै उपाधिनको परचा॥
नीचता निचोरि चतुरानन रच्यो है इन्हें
आवै दिन रैन दुराचारहीकी चरचा।
दानमें दयामें देशसेवा परमारथमें
देतके छदाम इन्हें लागत है मरचा॥

'सज्जनो ! कवि चचाके सम्बन्धमें मुझे बड़े महत्वकी एक बात मालूम हुई है—वह यह कि उनको ससुरालमें उन्हें कोई उल्लू नहीं पुकारता था, और अगर कोई पुकारता भी था तो उन्हें कोई छोटा साला नहीं था जो परोक्षकी बात सामने प्रकट कर दे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण मेरे पास यह है कि वे अपनी ससुरालसे प्रसन्न थे। उन्होंने यहाँ तक कह डाला है कि—

मुनि तापस आपसमें कलपैं
दिकपाल कपाल धुनैं निरधारी।
त्रिपुरारि मुरारिके धाम कहाँ
सुख जैसो 'चचा' को मिलै ससुरारी॥

१७

प्यारे रूपचन्द

बातें बहुत हुईं पर अधिकांशतः फुटकर। जमकर किसी एक विषयकी चर्चा अभी तक न हो पायी।

लाला मल्लूमलने कलाकन्दका विषय उठाया था। कलाकन्दसे गोलमेज, कायाकल्प, धौलागिरि, अलीबन्धु और शीर्षासन आदि विषयोंकी चर्चा कैसे छिड़ी, यह कहना कठिन है। फिर शीर्षासनसे दमन-चक्र, च्यवनप्राश, निरालाछंद और अघोरपंथकी आलोचना कैसे शुरू हुई, यह कौन बता सकता है।

पं० बिलवासी मिश्र जिस समय पधारे उस समय पैसे-रुपयेके महत्वपूर्ण विषयपर विचार हो रहा था। मुं० छेदीलालने कहा—'आप लोगोंके ध्यानमें यह बात अवश्य आयी होगी कि जेब ज्यों-ज्यों खाली होता है त्यों-त्यों बोझल्ता प्रतीत होता है।'

'मेरा तो यह अनुभव है कि उधर जेब हल्का हुआ कि इधर तबीयत भारी हो जाती है।'—लाला झाऊलालने फर्माया।

लाला घासीराम भी कुछ कहने जा रहे थे कि बिलवासीजीने टेबलपर हाथ पटका। हम लोग सावधान हो गये।

बिलवासीजीने कहा—'आप लोग जरा चुप रहिये। मेरे हृदयमें इसी विषयपर एक गद्य-काव्यका प्रादुर्भाव हो रहा है।'

हम लोगोंने देखा कि बिलवासीजी आरामकुर्सीपर लेटे हुए अपने शरीरको ऐंठ रहे हैं, माथेपर तीन शिकन पड़ी हुई हैं, कनपटीके पास स्वेदकण चमक रहे हैं। प्रसव-पीड़ाके सभी लक्षण वर्त्तमान थे।

उन्होंने अपनी आँखें आकाशकी ओर उठायीं और कहा—"प्यारे रूपचन्द! तुम कहां हो? आओ, तुम्हें अपने हृदयके पास—कोटके भीतरी जेबमें—रख लूं। तुम जिसके पास हो उसकी चाँदी है। तुमने अपना सिक्का सारे संसारमें जमाया है; तुम्हारी मायामें सारा जगत समाया है। तुम्हारे इशारे पर दुनिया नाचती है; तुम्हें उमड़ते देख मेरा मन-मयूर नाचता है; तुम्हारी कृपासे नित्य ही बड़े लोगोंके यहाँ पतुरिया नाचती है।

तुम्हारा अल्हड़पन सराहनीय है। जिस समय हाथसे गिरकर सड़कपर लुढ़कते हुए नालीमें जा रहते हो उस समय हम किस फुर्तीसे दायें-बायें आँख बचाकर तुम्हें उठा लेते हैं और मुँह पोंछनेवाले रुमालसे पोंछ कर जेबके हवाले करते हैं!

तुम्हारी सूरत हमारे हृदयपर अंकित है। सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी सब गोल हैं; तुम भी गोल हो। तुम्हारी इच्छासे किसीके पास जाता हूँ तो वह बातें भी गोल करता है।

प्यारे रूपचन्द ! आओ, तुम्हें टेंटमें—पेटके पास—रख लूँ; ज़रा पड़ोसीकी खोज-खबर लेते रहना। आओ, मैं तुम्हें हाथों-हाथ लोक लूँ। देहाती स्त्रियोंने तो तुम्हें गलेका हार बना रक्खा है। मैं तुम्हें अपना ईश्वर बनाऊँगा। आओ, चले आओ, हृदयपटल-पर स्वर्णाक्षरोंमें तुम्हारा स्वागत लिखा है।"

बिलवासीजीकी यह अवस्था मूर्च्छा या समाधिकी तो नहीं कही जा सकती पर एक प्रकारकी तन्मयता अवश्य थी। उन्होंने सचेत होकर कहा—'सज्जनो ! मैं कुछ अनाप-शनाप तो नहीं बक रहा था ?'

लाला मल्लूमलने उत्तर दिया—'पता नहीं आप क्या बक रहे थे पर आपने उसका नाम गद्य-काव्य बताया था।'

'आप रुपयेका स्तव सुना रहे थे'—मुं० छेदीलालने कहा।

'रुपया चीज ही ऐसी है। महाकवि चच्चाको रुपया छुए जब बहुत समय बीत जाता था तब वे काशी-विश्वनाथके मन्दिरमें जाकर फ़र्शपर हाथ फेर लेते थे।'

हमलोग कवि चच्चाकी इस मूर्खतापर हँसनेका विचार कर ही रहे थे कि बिलवासीजीने कहा—"सज्जनो ! इस मायामयकी कुछ ऐसी माया थी कि चच्चा-ऐसे महाकवि और साहित्य-शिल्पी को उसने पैसोंका मुहताज बनाया। तब भी बाहरी लोगोंके सामने अपनी ग़रीबीका दुखड़ा वे कभी नहीं रोए। आर्थिक

सहायताके लिए उन्होंने कभी किसीके आगे हाथ नहीं फैलाया। उनका सिद्धान्त था--

'चच्चा' भरोसे राम, रोवत्ते करैं बसेरो।
घरमें तवा न होय मोंछ पै ताव घनेरो॥

कवि 'चच्चा' के समयमें छब्बू नामका एक मशहूर चोर रहता था। वह अमीरोंसे चुराकर ग़रीबोंको ख़ैरात कर देता था। एक बार उसने ग़लतीसे कवि 'चच्चा' के मकानमें सेंध लगायी। पर घरकी हालत देख कर उसे बड़ी करुणा आयी। उनकी चारपाईपर बैठ कर वह रोने लगा। उसके सिसकनेसे कवि 'चच्चा' की नींद खुल गयी। उन्होंने उससे पूछा, भाई आप कौन हो? क्यों रोते हो? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

उसने उत्तर दिया कि क्या कहूँ, आज रातको सारी मेहनत बेकार गयी। इतनी देर तक जगा, सेंध लगायी, सेंध लगानेमें एक छेनी भी टूट गयी, पाँच रुपये पास वाले पुलिसमैनको सो जानेके लिये दिये, और हाथ कुछ न लगा। मुझे क्या मालूम था कि तुम उन लोगोंमें हो जिनके लिये मैं चोरी करता हूँ।

कवि चच्चा ग़रीब होते हुए भी बड़े उदार प्रकृतिके मनुष्य थे। एक रोज वे घरसे निकले तो मुहल्लेके लड़कोंका एक दल यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा—

आधा घोड़ा आधा खर।
आधा बानर आधा नर॥
घरसे बाहर निकले तुम।
कहाँ छिपाते लम्बी दुम॥

कवि चच्चाके स्थानमें मैं अगर होता तो लड़कोंसे भिड़ जाता और कितनोंकी चपतगाह गरम करके छोड़ता। पर कवि चच्चाने क्या किया? उनके जेबमें जमा-पूँजी कुल एक दुअन्नी थी; उन्होंने उसे निकाल कर लड़कोंके हाथपर रख दिया और कहा—'बालको! इसकी मिठाई खाना और इसी तरह कविताका अभ्यास करते रहना।'

इन लड़कोंमें एक बड़ा होनहार निकला। उसकी गिनती अच्छे कवियोंमें है। आजकल वह 'गुड़गुड़ी' नामक एक खण्ड-काव्य लिख रहा है।

यह सच है कि पैसेके अभावमें कवि चच्चाका जीवन बड़ा कष्टमय हो गया था पर अपनी बुद्धिके आगे वे धनको भी तुच्छ समझते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

सुबरन गल्ला लख्यो रतन मन्दिर पँचतल्ला।
पोर-पोर अँगुरीन मुँदे हीरनके छल्ला॥
रन-रल्लामें भीम भूमि पै छायो हल्ला।
बल मल्लन सों तून सिंहको तोरै कल्ला॥

बल प्रताप अट्टालिका, अतिसय उत्तम ये सकल ।
'चच्चा' उर अभिलाख यह, बुद्धि प्रथम पाऊँ विमल ॥

इसी 'विमल बुद्धि' की बदौलत कवि 'चच्चा' को अपने ईश्वर में अपार विश्वास था । संसारके सामने उन्होंने जो कुछ स्वांग रचा हो पर अपने ईश्वरके सामने उन्होंने सदा अपना असली रूप प्रकट किया । सुनिये—

धर्म्मको मर्म्म न जानतु हौं
जप जोग जगावन को नहिं आँगर ।
छीरके सागर पौढ़नहार
उतारिहैं पार हमें भवसागर ॥

ईश्वरके प्रति उपालम्भकी भाषाका प्रयोग अनेक कवियोंने बड़ी सफलतापूर्वक किया है । पर उसे नीचा-ऊँचा समझाकर 'राह-रास्त' पर लानेकी कोशिश कम कवियोंने की है । फिर अपने हितमें उसके हितको सिद्ध कर दिखाना कवि चच्चा ऐसे 'बैठकबाज' का ही काम था । जरा इस साहसको तो सराहिये; इस आपसदारीको तो देखिये । जान पड़ता है कोई मुँहलगा मुसाहब है जो कह रहा है—

ग्रन्थन गिनायो पुनि पन्थन पुनीत गायो
सन्तन सुनायो सुनि मेरो हुलसै हिया ।
करुना कृपाके धाम धाक दीनबन्धुताकी
धूम है धरापै दयासिन्धु धने दानिया ॥

[illegible]

सज्जनो ! मैं 'नाना' को महाकवि समझता हूँ और आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप भी उन्हें महाकवि समझें। मैं जानता हूँ कि मैं अगर उनकी आधी कविता भी कर सकता तो अपने-को बड़ा महाकवि समझता। फिर कवितामें हास्यरसका पुट देना तो वास्तवमें असाधारण योग्यताका काम है। कवि 'नाना' ने स्वयं इसे स्वीकार किया है। कहते हैं—

काव्यकला काव्यांच्या संग
गुलाम [illegible] गेल हँसी ना।
दैवकृपा प्रतिभा असे होय
तथापि अशास्त्र जात पसीना॥

जब हम इस बातका विचार करते हैं कि उनके जीवनका वातावरण कविताका पोषक नहीं था तब उनकी योग्यता और भी निखर कर हमारे सामने प्रकट होती है। पुरोहितीके पाखण्ड-पूर्ण धन्धेमें फँसा हुआ जनहीन और धनहीन व्यक्ति साहित्य-संसारमें अपना चरण-चिन्ह छोड़ गया—क्या यह कम आश्चर्य-का विषय है? उनकी प्रतिभाकी पूर्णिमा पूरी तरह छिटकती तो संसारको चकित कर देती पर विपत्तियोंके बादलने सारा खेल

बिगाड़ दिया। अब इसका अनुमान करना भी कठिन है कि उन्होंने कितना हाथपाँव पसारा होता यदि—

> त्रास न आस न काहूकी रंच
>
> विरंचिने भाल लिखी तो भलाई।
>
> भोजन छाजन डारानकी
>
> सब भाँति सदा सुविधा सुखदाई॥
>
> प्रीत प्रतीत भरी सुमुखी
>
> सुख सौं करजोरि करै सेवकाई।
>
> चाव सौं बैठ 'चचा' चरखा
>
> कविताकी करें कोरिसौं मिनताई॥

मेरी हजामत

ले०—अन्नपूर्णानन्द

श्रद्धेय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"पढ़ा कर साद्यन्त सुनी······बड़ा मनोरंजन हुआ। कई जगह बेतहाशा हँसी आ गयी। सामाजिक बुराइयोंकी सूचक जो चुटकियाँ आपने ली हैं वे बहुत ही पुर-असर हैं······हिन्दी साहित्यके सौभाग्यसे हास्यरसकी परिमार्जित सामग्री-से परिपूर्ण है······विशुद्ध हास्यरसके दर्शन हुए······लेखकको बधाई।"

स्व० पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा—"कहानियाँ बड़ी मज़ेदार हैं, पढ़नेमें खूब जी लगता है, वर्णनशैली रोचक है। भाषामें जान है, जगह जगह मनोभावोंका सुन्दर विश्लेषण है······अभिनन्दनीय सफलता प्राप्त हुई······गुणज्ञ पारखी प्रकाशक प्रशंसाके पात्र हैं······लेखकको ऐसी सुन्दर रचनाके लिये बधाई देता हूँ, स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ ये कहानियाँ बड़े चावसे पढ़ी जायँगी, इनका प्रचार और आदर होगा।"

विशाल-भारत—"कहानियाँ क्या हैं, हँसी-मज़ाकका फौव्वारा है······सजीव वृत्तान्त है······बड़ी चुलबुली भाषा······हास्य-रससे ओतप्रोत है। लेखकने हँसी-हँसीमें हमारे पचीसों कुसंस्कारों और कुरी-तियोंपर गहरी चुटकियाँ ली हैं······।"

प्रताप—"हर्षकी बात है कि 'मेरी हजामत' की कहानियाँ ऊँचे दर्जेकी हैं। ये ज़बरदस्तीके मसख़रेपन और अश्लीलतासे बची हुई हैं। कहानियाँ बहुत मनोरंजक और भावोत्पादक हैं और उनकी भाषा जान-दार है! लेखककी प्रतिभापूर्ण कल्पनाशक्ति और वर्णनशैलीको देखते हुए आशा होती है कि वे अगर लिखनेका क्रम जारी रक्खें तो प्रथम श्रेणीके हास्यरस-लेखक हो जायँगे।"

लोकमत—"······तीनों कहानियाँ एकसे एक,बढ़ कर हैं। आप चाहे जैसी गम्भीर मुद्रामें हों आपको सहसा अपनी मुखाकृतिको बदल देना ही

पड़ेगा······भावप्रदर्शनशैलीकी सराहना अवश्य करनी पड़ेगी····लेखक हमारी पतित, उपेक्षापर्ण, उपहासनीय स्थितिपर हास्यकी कोमलताका ऐसा वज्र प्रहार करता है कि अपनी दशापर दर्द होने लगता है······।"

सैनिक—"······लेखकको अपने विषयके प्रतिपादनमें बहुत सफलता मिली है······हास्यरसका अच्छा विकास हुआ है।

The Pioneer—"A good attempt at light literature."

The Leader—"Full of humour · very interesting reading The author is to be congratulated on having succeeded in combining satire and innocent fun in such a beautiful manner."

मगन रहु चोला !

लें०—अन्नपूर्णानन्द

पं० अवध उपाध्याय—"······पुस्तक अद्वितीय है। हिन्दी हास्यरसकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है······उक्तियाँ मार्मिक हैं, भाषा परिमार्जित है, भाव सुन्दर हैं। ओह ! मैं नहीं कह सकता कि पुस्तक पढ़ कर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई······केवल यही एक पुस्तक हिन्दी-संसारमें लेखकको अमर कर देगी······।"

पं० ज्वालादत्त शर्म्मा—"······बहुत उत्तम है······बड़ा शुद्ध मज़ाक है, हिन्दीमें अपने ढंगकी बिलकुल नई चीज़ है······हास्यरसके साहित्यका उज्ज्वल मणि है······आप हास्यरसकी नब्ज़ पहचानते हैं···।"

साहित्याचार्य्य पं० शालग्राम शास्त्री—"······इसके कई अंश पढ़ कर तो 'राम जाने' यह चोला भी मगन हो उठा······हमने हिन्दीमें हास्यकी जितनी पुस्तकें देखी हैं उन सबसे आपके लिखनेका ढंग उत्कृष्ट और परिमार्जित है।"

हिन्दीभूषण बा० शिवपूजनसहाय—"प्रत्येक पंक्ति सुकुमार

विनोदसे भरी हुई है······शैलीपर लेखककी अपनी छाप है······हिन्दी-में ऐसे नये ढंगके विनोदकी सृष्टि करनेवाले इस लेखककी रँगीली शैलीमें ऐसा मीठा-मीठा आनन्द अनुभूत होता है मानों हलकसे ज़िगर तक सीधी गुलाबी रबड़ीका तार बँध जाता है।"

सुधा—"······अत्यन्त अभिनन्दनीय······पात्र ऐसे सजीव चित्रित हुए हैं कि आसानीसे भुलाये नहीं जा सकते······कई परिच्छेद इतने चित्ताकर्षक हैं कि उन्हें बार बार पढ़नेको जी चाहता है·········चुल-बुली जानदार भाषाने पुस्तकमें चार चाँद लगा दिये हैं, निर्दोष और शुद्ध व्यङ्ग्यके लिये बहुत ही उपयुक्त······ऐसी सफल तथा सर्वाङ्गसुन्दर पुस्तक लिखनेके लिये श्री अन्नपूर्णानन्दजी हमारी बधाईके पात्र हैं······ पुस्तकका हर्ष-पूर्ण हार्दिक स्वागत करते हैं······।"

सरस्वती—"······हास्यरसके लिखनेमें सफलता प्राप्त की है······ संग्रह करके सुरुचिपूर्ण हास्यरसका आस्वादन करना चाहिये······।"

भारत—"······पं० बिलवासी मिश्रके व्याख्यान और उनकी कवि-ताओंका क्या कहना····· पात्रोंने जो पार्ट किया है वह अत्यन्त सुन्दर है······।"

गंगा—"······सभी परिच्छेद एकसे एक बढ़कर हैं······कहीं-कहीं तो ऐसा मज़ेदार मज़ाक मिल जाता है कि पढ़नेवाला हँसते-हँसते 'लोटन-कबूतर' बन जाता है। भाषामें बड़ा लोच है। कई वाक्य साहित्यिक विनोदसे लबालब हैं। हास्यरसकी ऐसी मनोहर पुस्तक इधर हिन्दीमें हमने तो नहीं देखी है। लेखककी वर्णनशैलीमें बड़ी गुदगुदी है······।"

मेरी हजामत	**मगन रहु चोला !**
मूल्य ॥=)	मूल्य ॥।)

मिलनेका पता—

बलदेव-मित्र-मण्डल, राजादरवाजा, काशी

शिक्षाप्रद उत्तमोत्तम कहानियाँ और उपन्यास

मीनाबाजार

इस पुस्तकके लेखक पं० हनूमानप्रसादजी शर्मा हिन्दीमें स्वास्थ्य-साहित्यके प्रसिद्ध और सफल रचयिता हैं। इसमें आप-हीकी, नवयुगकी भावनाओंसे पूर्ण, सामाजिक और राजनीतिक, १२ कहानियोंका संग्रह है। इसकी प्रत्येक कहानी समाज सुधार और राजनीतिके हृदयग्राही भावोंसे सराबोर है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर; मोटा ऐंटिक कागज; चित्ताकर्षक एवं दर्शनीय कलापूर्ण तिरंगा कवर; मूल्य १)

त्रिवेणी—"कहानियाँ सुखान्त और दुखान्त दोनों प्रकार की हैं। वर्णनशैली सुन्दर, सदाचार-शिक्षासे परिपूर्ण और भाषा सरस है। कहीं-कहीं पर अवधी और बनारसी माधुर्यने वाक्योंको और भी मधुर और मनो-मुग्धकारी बना दिया है। लेखक महोदयका प्रतिबिम्ब—उनका अपनापन—प्रत्येक रचनामें अंकित है।"

माधुरी—"देश, समाज और मानवीय चरित्रोंका सीधा-सादा किन्तु शिक्षाप्रद वर्णन करनेमें लेखकको कहानियोंमें अच्छी सफलता मिली है। भाषा साफ़-सुथरी और कहानीके योग्य बन पड़ी है। कहानियाँ विशेष मनोरंजक एवं उपदेशप्रद मालूम हुईं।"

अश्रुदल

यह श्री मङ्गलप्रसादजी विश्वकर्माकी चुनी हुई सुन्दर साहित्यिक कहानियोंका संग्रह है। इनमें आह है, दर्द है एवं दुःखी हृदयोंकी ज्वाला है। कई कहानियोंको पढ़कर आप यही कह उठेंगे कि करुणरसका अपूर्व